...गानाति नाधमस्तत्परो ज...
...जो गीताशास्त्रको नहीं जानता है उसके सुंदररूपको...
विभवको और श्रेष्ठगृहाश्रमको धिक्कार है और उससे अधि...
नहीं है ॥ १६ ॥

धिक्प्रागल्भ्यं प्रतिष्ठां च पूजां मानं मह...
गीताशास्त्रे रतिर्नास्ति तत्सर्वं निष्फलं ज...

जिसकी गीताशास्त्रमें प्रीति नहीं उसकी हिम्मत, प्रति...
और महात्मापनेको धिक्कार है और उसका सर्व निष्फल है ॥ १७ ॥

धिक्तस्य ज्ञानमाचारं व्रतं चेष्टां तपो यशः ॥
गीतार्थपठनं नास्ति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १८ ॥

...के गीतार्थका पठन नहीं है उसके ज्ञानको तथा आचार, व्रत, चेष्टा,
...प और यशको धिक्कार है उससे अधिक कोई जन अधम नहीं है ॥ १८ ॥

गीतागीतं न यज्ज्ञानं तद्विद्ध्यासुरसंज्ञकम् ॥
तन्मोघ धर्मरहितं वेदवेदांतगर्हितम् ॥ १९ ॥

जो ज्ञान गीताका गाया नहीं है उस ज्ञानको आसुरी ज्ञान जानना
वह व्यर्थ और धर्मरहित तथा वेदवेदांतकरके निंदित है ॥ १९ ॥

यस्माद्धर्ममयी गीता सर्वज्ञानप्रयोजिका ॥
सर्वशास्त्रमयी गीता तस्माद्गीता विशिष्यते ॥ २० ॥

जिसवास्ते कि, गीता धर्ममयी और सर्वज्ञानोंकी प्रवर्त्तकरनेवाली है
और सर्वशास्त्रमयी है; ऐसा कहा उससे गीता सबशास्त्रोंसे श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

योऽधीते सततं गीतां दिवा रात्रौ यथार्थ...
...स्वपन्गच्छन्वदंतिष्ठञ्छाश्वतं मोक्षमाप्...

जो निरंतर रातिदिन अर्थसहित गीताको सोते, चलते, बोलते, खड़े भी पढते रहते हैं वे सनातन मोक्षको प्राप्त होतेहैं ॥ २१ ॥

शालग्रामशिलाग्रे तु देवागारे शिवालये ॥
तीर्थे नद्यां पठेद्यस्तु वैकुंठं याति निश्चितम् ॥ २२ ॥

शालग्रामके संमुख देवमंदिरमें, शिवालयमें, तीर्थमें और नदीकिनारे जो गीताको पढता है सो निश्चय वैकुंठको जाताहै ॥ २२ ॥

देवकीनंदनः कृष्णो गीतापाठेन तुष्यति ॥
यथा न वेदैर्दानैश्च यज्ञतीर्थव्रतादिभिः ॥ २३ ॥

जैसे श्रीदेवकीनंदन कृष्ण गीतापाठसे संतुष्ट होते हैं, वैसे वेदपाठ, दान, यज्ञ, तीर्थ और व्रतादिकोंसे नहीं संतुष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

गीताऽधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा ॥
तेन वेदाश्च शास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ॥ २४ ॥

जिसने भक्तिभावपूर्वक चित्त लगाय गीताका अध्ययन किया वह सर्व वेद, शास्त्र और पुराणभी पढचुका ॥ २४ ॥

योगिस्थाने सिद्धपीठे शिष्टाग्रे सत्सभासु च ॥
यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे पठन्याति परां गतिम् ॥ २५ ॥

योगीके स्थानमें, विंध्येश्वरी इत्यादि सिद्धपीठमें, श्रेष्ठपुरुषके संमुख साधु सभामें, यज्ञमें और विष्णुभक्तके संमुख पाठ करनेसे जन मोक्ष पाताहै ॥ २५ ॥

गीतापाठं च श्रवणं यः करोति दिनेदिने ॥
क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतास्तेन सदक्षिणाः ॥ २६ ॥

जो दिनदिन प्रति गीताका पाठ और श्रवण करताहै वह सबअग्निष्टोमादिक और अश्वमेधादिक दक्षिणासहित यज्ञकरचुका ॥ २६ ॥

यः शृणोति च गीतार्थं कीर्त्तयेच्च स्वयं पुमान् ॥

श्रावयेच्च परार्थं वै स प्रयाति परं पदम् ॥ २७ ॥

जो गीताका अर्थ सुने और आप कहे दूसरोंको श्रवण करावे वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥

गीतायाः पुस्तकं नित्यं योऽर्चयत्येव सादरम् ॥
विधिना भक्तिभावेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥

जो आदरपूर्वक नित्य गीताके पुस्तकको विधिपूर्वक भक्तिभावसंयुक्त पूजताहै उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २८ ॥

सकला चोर्वरा तेन दत्ता यज्ञे भवेत्किल ॥
व्रतानि सर्वतीर्थानि दानानि सुबहून्यपि ॥ २९ ॥

वह गीताके पूजनेवाला यज्ञमें सर्व पृथ्वी दान देचुका, तथा सर्वव्रत, सर्वतीर्थ और बहुतसे दान भी देचुका ॥ २९ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्र नो प्रविशंति वै ॥
अभिचारोद्भवं दुःखं परेणापि कृतं च यत् ॥ ३० ॥

जिस घरमें गीताका पूजन होता है वहां भूत, प्रेत, पिशाचादिक और दूसरेके किये मंत्रयंत्रादिक अभिचारज दुःख भी नहीं प्रवेश कर सकते हैं ॥ ३० ॥

नोपसर्पन्ति तत्रैव यत्र गीतार्चनं गृहे ॥
तापत्रयोद्भवा पीडा नैव व्याधिभयं तथा ॥ ३१ ॥

जिसघरमें गीताका पूजन है वहां दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापोंकी पीडा और रोगकृतपीडा नहीं होती है ॥ ३१ ॥

न शापं नैव पापं च दुर्गतिं न च किंचन ॥
देहेऽरयः षडेते वै न बाधंते कदाचन ॥ ३२ ॥

वहां कोईका शाप और पाप और दुर्गति कभी नहीं होती है तथा देहमें रहे जो पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन ऐसे छह शत्रु भी पीडा नहींकरते हैं॥ ३२ ॥

भगवत्परमेशाने भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
जायते सततं तत्र यत्र गीताभिनंदनम् ॥ ३३ ॥

जहाँ गीताके अर्थका निरंतर विनोद होता है तहाँ भगवान्में अतिउत्तम अखंडभक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥

प्रारब्धं भुंजमानोऽपि गीताभ्यासे सदारतः ॥
स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपबध्यते ॥३४॥

जो सर्वकाल गीताहीके अभ्यासमें निरत है वह प्रारब्धवशसे संसारभी भोगता है, तोभी वह मुक्त और सुखी है, तथा कर्मसेभी बँधनेका नहीं है ३४

महापापादिपापानि गीताऽध्यायी करोति चेत् ॥
न किंचित्स्पृशते तस्य नलिनीदलमंभसा ॥ ३५ ॥

जो नित्य गीताका श्रवण, पठन, मनन, करता हो और वह दैवयोगसे भूलमें ब्रह्महत्यादिक महापापभी करे तोभी जलकरके कमलपत्रवत् लिप्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥

स्नातो वा यदि वाऽस्नातः शुचिर्वा यदि वाऽशुचिः ॥
विभूतिं विश्वरूपञ्च संस्मरन्सर्वदा शुचिः ॥ ३६ ॥

स्नान किये होय अथवा न किये होय, पवित्र होय अथवा अपवित्र होय विभूतियोग और विश्वरूपदर्शन अध्यायको पढताहुवा सदा पवित्र होताहै ३६

अनाचारोद्भवं पापमवाच्यादि कृतं च यत् ॥
अभक्ष्यभक्षजं दोषमस्पर्शस्पर्शजं तथा ॥ ३७ ॥
ज्ञाताज्ञातकृतं नित्यमिंद्रियैर्जनितं च यत् ॥
तत्सर्वं नाशमायाति गीतापाठेन तत्क्षणात् ॥३८॥

जो अनाचारसे और जो निंदितशब्द बोलनेसे, जो अभक्ष्यभक्षणसे जो न छूने योग्यके छूनेसे, पाप भये हों; तथा जो जान और अजानमें नित्य पाप भयेहों और जो इंद्रियोंसे पाप भयेहों वे सर्व गीतापाठसे तत्काल नष्ट होतेहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वत्र प्रतिभोक्ता च प्रतिग्राही च सर्वशः ॥
गीतापाठं प्रकुर्वाणो न लिप्येत कदाचन ॥ ३९ ॥

जो सर्वत्र भोजन करता हो सर्वप्रतिग्रह लेताहो वह भी पापों करके गीतापाठसे लिप्त नहीं होताहै ॥ ३९ ॥

रत्नपूर्णां महीं सर्वां प्रगृह्यातिविधानतः ॥
गीतापाठेन चैकेन शुद्धः स्फटिकवत्सदा ॥ ४० ॥

विधिहीन रत्नपूरित पृथिवीका दानभी लेकर एक गीतापाठसे शुद्धस्फटिकमणिवत् निष्पाप होताहै ॥ ४० ॥

यस्यांतः करणं नित्यं गीतायां रमते सदा ॥
सर्वाग्निकः सदाजापी क्रियावान्स च पंडितः ॥४१॥

जिसका अंतःकरण सदा गीतामें रमताहो वह सर्वअग्निहोत्री, सदा जप करनेवाला, क्रियावान् और पंडित है ॥ ४१ ॥

दर्शनीयः स धनवान्स योगी ज्ञानवानपि ॥
स एव याज्ञिको ध्यानी सर्ववेदार्थदर्शकः ॥ ४२ ॥

वही दर्शनयोग्य है, वही धनवान्, वही योगी, वही ज्ञानवान्, वही याज्ञिक, वही ध्यानी और वही सर्ववेदोंके अर्थको देखनेवालाहै ॥४२॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यं पाठे प्रवर्त्तते ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनिभूतले ॥ ४३ ॥

गीताका पुस्तक जहां नित्य पाठमें प्रवर्त्त हो वहां पृथिवीपरके सर्व प्रयागादितीर्थ सदा रहते हैं ॥ ४३ ॥

निवसंति सदा गेहे देहदेशे सदैव हि ॥
सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये ॥ ४४ ॥

और यहां घरमें और देहमेंभी सर्व देव, ऋषि, योगी और पन्नगभी सदा बसते हैं ॥ ४४ ॥

गोपालबालकृष्णोपि नारदध्रुवपार्षदैः ॥
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्त्तते ॥ ४५ ॥

जहाँ गीता प्रवर्त्त होती है तहाँ नारद, ध्रुव और सर्व पार्षदनसहित गोपाल—बालकृष्ण शीघ्रही सहाय होते हैं ॥ ४५ ॥

यत्र गीताविचारश्च पठनं पाठनं तथा ॥
तत्राहं निश्चितं पार्थ निवसामि सदैव हि ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि, हे पार्थ ! जहां नित्य गीताका विचार होता है; तहां मैं निश्चय सर्वदा रहता हूं ॥ ४६ ॥

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम् ॥
गीता मे ज्ञानमत्यग्र्यं गीता मे ज्ञानमक्षयम् ॥ ४७ ॥

हे अर्जुन ! गीता मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम सार है, गीता मेरा अतिअग्रज्ञान और अक्षयज्ञानभी है ॥ ४७ ॥

गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं गृहम् ॥
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम् ॥ ४८ ॥

गीता मेरा उत्तमस्थान है और गीता मेरा उत्तम सार है, गीताके ज्ञानको धारण किये भये तीनों लोकोंको पालता हूं ॥ ४८ ॥

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः ॥
अर्द्धमात्राक्षरा नित्या स्वनिर्वाच्यपदात्मिका ॥ ४९ ॥

गीता मेरी उत्तम विद्या है, गीता ब्रह्मरूप है, इसमें संशय नहीं अर्द्धमात्रा,

नाशरहित, सनातन, अनिर्वाच्यपदरूप ऐसी परावाणीरूप मेरी यह गीता है ॥ ४९ ॥

गीतानामानि वक्ष्यामि गुह्यानि शृणु पांडव ॥
कीर्त्तनात्सर्वपापानि विलयं यांति तत्क्षणात् ॥५०॥

हे पांडव ! गीताके जो गुप्तनाम हैं सो मैं तुमसे कहता हूं, जिनके कीर्त्तनसे तत्काल सर्व पापक्षय होते हैं ॥ ५० ॥

अथ गीतानामानि ।

गीता गंगा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ॥
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसंध्या मुक्तगेहिनी ॥ ५१ ॥
अर्द्धमात्रा चिदानंदा भवघ्नी भवनाशिनी ॥
वेदत्रयी पराऽनंता तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी ॥ ५२ ॥
इत्येतानि जपन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथांते परमं पदम् ॥ ५३ ॥

अब गीताके नाम कहते हैं—गीता १ गंगा २ गायत्री ३ सीता ४ सत्या ५ सरस्वती ६ ब्रह्मविद्या ७ ब्रह्मवल्ली ८ त्रिसंध्या ९ मुक्तगेहिनी १० अर्द्धमात्रा ११ चिदानंदा १२ भवघ्नी १३ भयनाशिनी १४ वेदत्रयी १५ परा १६ अनंता १७ तत्वार्थज्ञानमञ्जरी १८ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ गीताके इन अठारह नामोंको नित्य मन स्थिर करके जपता रहै तो शीघ्रही ज्ञानसिद्धिको प्राप्त होके अंतमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

पाठेऽसमर्थः संपूर्णे तदर्द्धं पाठमाचरेत् ॥
तदा गोदानज पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥

जो संपूर्ण पाठ न करसकै तो आधीगीताका याने नव अध्यायनका पाठ करै तो एक गोदानका पुण्य पावै; इसमें संशय नहीं ॥ ५४ ॥

षडंशं जपमानस्तु गंगास्नानफलं लभेत् ॥
त्रिभागं पठमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ॥ ५५ ॥

छठे अंशको याने तीन अध्यायका नित्य पाठ करे तो गंगास्नानका फल पावै. तीसरे भागका याने छः अध्यायनका नित्य पाठ करनेसे सोमयागका फल पावै ॥ ५५ ॥

तथाऽध्यायद्वयं नित्यं पठमानो निरंतरम् ॥
इंद्रलोकमवाप्नोति कल्पमेकं वसेद्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

दो अध्यायोंका नित्य पाठ करता रहै तो इंद्रलोकको प्राप्त होके, वहीं एककल्प वास करै ॥ ५६ ॥

एकमध्यायकं नित्यं पठते भक्तिसंयुतः ॥
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम् ॥ ५७ ॥

जो एकही अध्यायका निरंतर नेमसे भक्तिपूर्वक पाठ करता रहै तो रुद्रलोकको प्राप्त होके वहां शंकरका गण होके, बहुत कालपर्यंत याने कल्पपर्यंत रहिके मुक्त होताहै ॥ ५७ ॥

अध्यायार्द्धं च पादं वा नित्यं यः पठते जनः ॥
सप्राप्नोति रवेर्लोकं मन्वंतरशतं समाः ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य गीताका आधा अथवा पाव अध्यायकाभी नित्यनेमसे पाठ करता रहै तो वह सूर्यलोकमें सौ मन्वंतरके वर्षोंपर्यंत वास करै ॥ ५८ ॥

गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पंच चतुष्टयम् ॥
त्रिकद्विकैकमर्द्धं वा श्लोकानां च पठेन्नरः ॥
चंद्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५९ ॥

जो गीताके दश श्लोक अथवा सात पांच चार तीन दो एक अथवा

आधे श्लोककाभी निरंतर पठन करै, तो अयुतायुतवर्ष याने दशकोटिवर्ष (१०,००,००,०००) चंद्रलोकमें वास करैगा ॥ ५९ ॥

गीतार्थमेककालेपि श्लोकमध्यायमेव च ॥
स्मरंस्त्यक्त्वा जनो देहं प्रयाति परमं पदम् ॥ ६० ॥

जो एककालभी गीताके एक श्लोकका अथवा अध्यायका अर्थ स्मरता भया देहको त्यागै तो मोक्षको पावै ॥ ६० ॥

गीतार्थं वापि पाठं वा शृणुयादंतकालतः ॥
महापातकयुक्तोपि मुक्तिभागी भवेज्जनः ॥ ६१ ॥

जो अंतकालके समयमें गीताका अर्थ अथवा पाठ सुनता देह त्यागै, तो महापातकीभी मुक्त होय ॥ ६१ ॥

गीतापुस्तकसंयुक्तः प्राणांस्त्यक्त्वा प्रयाति यः ॥
स वैकुंठमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ६२ ॥

जो गीताके पुस्तकयुक्त प्राणोंको त्यागै, सो विष्णुलोकको प्राप्त होके विष्णुसमीप आनंद करै ॥ ६२ ॥

गीताध्यायसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत् ॥
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ६३ ॥

जो मरणसमयमें गीतापुस्तकका एक अध्यायभी समीप होय, तो मनुष्यजन्म पायके फिर गीताभ्यास करके मुक्तहोय ॥ ६३ ॥

गीतोच्चारणसंयुक्तो म्रियमाणोगतिं लभेत् ॥
यद्यत्कर्म च सर्वत्र गीतापाठं प्रकीर्त्तयेत् ॥
तत्तत्कर्म च निर्दोषं कृत्वा पूर्णमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

मरतेसमयभी जो गीता ऐसा उच्चारण करके मरे तोभी मुक्त होय जो जो कर्म करै उस उसमें गीतापाठ करे तो निर्दोष कर्मका संपूर्ण फल पावे.

पितॄनुद्दिश्य यःश्राद्धे गीतापाठं करोति वै ॥
संतुष्टाः पितरस्तस्य निरयाद्यांति सद्गतिम् ॥६५॥
जो श्राद्धमें पितृनके निमित्त गीताका पाठ करे तो वे पितर संतुष्ट भयेहुये नरकसे मुक्तिको जाँय ॥ ६५ ॥

गीतापाठेन संतुष्टाः पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥
पितृलोकं प्रयांत्येव पुत्राशीर्वादतत्पराः ॥ ६६ ॥
गीतापाठसे प्रसन्न पितर पुत्रको आशीर्वाद देतेभये पितृलोकको जातेहैं ६६

लिखित्वा धारयेत्कंठे बाहुदंडे च मस्तके ॥
नश्यंत्युपद्रवाः सर्वे विघ्नरूपाश्च दारुणाः ॥ ६७ ॥
गीताको लिखके गलेमें, भुजापर अथवा मस्तकमें धारण करे तो उसके विघ्नरूप दारुण उपद्रव नाश होय ॥ ६७ ॥

गीतापुस्तकदानं च धेनुपुच्छसमन्वितम् ॥
दत्वातत्सद्द्विजे सम्यक्कृतार्थोजायते जनः ॥ ६८ ॥
गोदान देनेपर गौकी पूँछसहित हाथमें गीताका पुस्तक लेके जिसने दान दिया वह सर्व करचुका ॥ ६८ ॥

पुस्तकं हेमसंयुक्तं गीतायाः शुद्धमानसः ॥
दत्वा विप्राय विदुषे जायते न पुनर्भवे ॥ ६९ ॥
सुवर्णसंयुक्त गीतापुस्तकका दान जो शुद्धमनसे विद्वान् ब्राह्मणको देय, सो फिर जन्म न पावे ॥ ६९ ॥

शतपुस्तकदानं च गीतायाः प्रकरोति यः ॥
सयाति ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ७० ॥
जो गीताके सौ पुस्तकोंका दान करे, तो जिसलोकसे फिर इहां नहीं जन्मता है, उस वैकुंठको जाताहै ॥ ७० ॥

गीतादानप्रभावेण सप्तकल्पावधीः समाः ॥

विष्णुलोकमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ७१ ॥

गीतादानके प्रभावसे विष्णुलोकमें सात कल्पपर्यंत विष्णुसंयुत रहके आनंद करे ॥ ७१ ॥

सम्यक् श्रुत्वा च गीतार्थं पुस्तकं यः प्रदापयेत् ॥
तस्मै प्रीतोस्मि भगवान्ददामि मनसेप्सितम् ॥ ७२ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जो गीताका अर्थ सुनिके, पुस्तकका दान करे, इसको मनवांछित फल देता हूं ॥ ७२ ॥

देहं मनुषमाश्रित्य चातुर्वर्ण्येषु भारत ॥
न शृणोति पठत्येव गीताममृतरूपिणीम् ॥ ७३ ॥
हस्तात्त्यक्त्वाऽमृतं प्राप्तं कष्टात्क्ष्वेडं समश्नुते ॥
पीत्वा गीतामृतं लोके लब्ध्वा मोक्षं सुखी भवेत् ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य देह पाइके इस अमृतरूपिणी गीताको न पढताहै और न सुनता है सो हाथमें आयेभये अमृतको त्यागके विषको कष्टसे पीता है; इस गीतारूप अमृतका पान करके मोक्षको प्राप्त होके सुखी होताहै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

जनैः संसारदुःखार्त्तैर्गीताज्ञानं च यैः श्रुतम् ॥
संप्राप्तममृतं तैश्च गतास्ते सदनं हरेः ॥ ७५ ॥

संसारदुःखकरके पीडित जिन मनुष्यों ने इस गीताके ज्ञानको सुना, वे अमृत होके विष्णुलोकको प्राप्त भये ॥ ७५ ॥

गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः ॥
निर्धूतकल्मषा लोके गतास्ते परमं पदम् ॥ ७६ ॥

इस गीताका आश्रय करके, बहुतसे जनकादिकराजा पापरहित होके परमपदको गये हैं ॥ ७६ ॥

गीतासु न विशेषोस्ति जनेषूच्चावचेषु च ॥
ज्ञानेष्वेव समग्रेषु समा ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ७७ ॥

गीतामें नीच ऊंचका विशेष नहीं, आत्मा सबमें समान है; इससे यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ॥ ७७ ॥

योभ्यसूयति गीतां च निंदां वा प्रकरोति च ॥
प्राप्नोति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७८ ॥

जो गीताकी ईर्षा और निंदा करता है सो प्रलयपर्यंत नरकमें रहता है ७८

अहंकारेण मूढात्मा गीतार्थं नैव मन्यते ॥
कुंभीपाके स पच्येत यावत्कल्पलयो भवेत् ॥७९॥

जो अहंकारसे गीताके अर्थको नहीं मानता है, सो प्रलयकालपर्यंत कुंभीपाकनरकमें पचता है ॥ ७९ ॥

गीतार्थं वाच्यमानं यो न शृणोति समीपतः ॥
श्वसूकरभवां योनिमनेकां सोऽधिगच्छति ॥ ८० ॥

जो गीता बँचतीभईको नजदीक जाके नहीं सुनता है सो कुत्ता और सूवरके अनेक जन्म पाता है ॥ ८० ॥

चौर्यं कृत्वा च गीतायाः पुस्तकं यः समानयेत् ॥
नतस्य स्यात्फलं किंचित्पठनं च वृथा भवेत् ॥८१॥

जो गीताकी पुस्तक चोरीसे लाइके उसपर पाठ करे तो उसको पाठका फल तो नहीं मिले और वृथापरिश्रम होता है ॥ ८१ ॥

यःश्रुत्वा नैव गीतार्थं मोदते परमादरात् ॥
नैवाप्नोति फलं लोके प्रमादाच्च वृथा श्रमम् ॥ ८२ ॥

जो गीताके अर्थको सुनके अतिआदरसे आनंद नहीं होता है उसको फल नहीं मिलता है वह प्रमादसे वृथा होता है ॥ ८२ ॥

गीतां श्रुत्वा हिरण्यं च पट्टांबरप्रवेष्टनम् ॥
निवेदयेच्च तद्धेष्टय प्रीतये परमात्मनः ॥ ८३ ॥

गीताको सूनके सुवर्ण और रेशमी वस्त्र पुस्तक लपेटनेका उसपर ...टिके परमत्माकी प्रीतिके वास्ते बाँचनेवालेको देना ॥ ८३ ॥

वाचकं पूजयेद्भक्त्या द्रव्यवस्त्राद्युपस्करैः ॥
अन्नैर्बहुविधैः प्रीत्या तुष्यतां भगवानिति ॥ ८४ ॥

द्रव्य, वस्त्र, आभूषणादिकोंकरके वक्ताका पूजन करके नानाप्रकारके अन्न देना कि, भगवान् प्रसन्न होवे, इस बुद्धिसे देना ॥ ८४ ॥

माहात्म्यमेतद्गीतायाः कृष्णप्रोक्तं सनातनम् ॥
गीतांते पठते यस्तु यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

यह श्रीकृष्णका कहाभया सनातनगीताका माहात्म्य इसको गीतापाठके अंतमें पढे तो यथोक्त फल पावै ॥ ८५ ॥

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ॥
वृथा पाठफलं तस्य श्रम एवहि केवलम् ॥ ८६ ॥

गीतापाठ करके माहात्म्यको न बाँचै तो उसके पाठ करनेका श्रम वृथाही है. पाठका फल नहीं पाताहै ॥ ८६ ॥

एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीतापाठं करोति यः ॥
श्रद्धया यः शृणोत्येव दुर्लभां गतिमाप्नुयात् ॥८७॥

जो इस माहात्म्यके संयुक्त गीतापाठ करेगा अथवा सुनेगा सो दुर्लभ मोक्षपदको पावेगा ॥ ८७ ॥

श्रुत्वा पठित्वा गीतां च माहात्म्यं यः शृणोति वै ॥
तस्य पुण्यफलं लोके भवेद्धि मनसेप्सितम् ॥८८॥

जो गीताको सुनके और पढके माहात्म्यको पढते सुनते हैं वे मनइच्छित फलको पाते हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीमद्वाराहपुराणे सूतशौनकसंवादे श्रीकृष्णप्रोक्तं श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यं संपूर्णम् ।

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचिताश्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यचंद्रिकाव्याख्या समाप्तिमगात् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापखाना-बंबई.

श्रीगणेशाय नमः।

अथ

अन्वयाङ्क–दोहा–भाषाटीकासहिता–

श्रीभगवद्गीता प्रारभ्यते।



श्रीर्जयति ॥ प्रणम्य परमात्मानं कृष्णं रामानुजं गुरुम् ॥
गीताव्याख्यामहं कुर्वे गीतामृततरंगिणीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

दोहा–धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्रमें, मिलेयुद्धकेसाज ॥
संजयमोसुतपांडवन, कीन्हेकैसेकाज ॥ १ ॥

जब श्रीकुरुक्षेत्रमें दुर्योधनादिक धृतराष्ट्रके पुत्र और युधिष्ठिरादिक पांडुके पुत्र आपआपकी सेनाओंको लेके युद्धके वास्ते तयार भये तब यहाँ हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्र संजयसे पूछने लगे कि, हेसंजय! धर्मस्थल कुरुक्षेत्रमें युद्धकीइच्छा कियेभये इकट्ठे भयेहुवे मेरेपुत्र और पांडुकेपुत्र ये निश्चयकरके क्यां करनेको प्रारंभ करते भये सो कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच ॥ दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योध-
नस्तदा॥आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत॥२॥

दोहा–पांडवसेनाव्यूहलखि, दुर्योधनढिंगआय ॥
निजआचारजद्रोणसों, बोलेऐसेभाय ॥ २ ॥

ऐसे धृतराष्ट्रके वाक्य सुनिके संजय कहते भये कि, हे राजन्! राजा दुर्योधन व्यूहरचनायुक्त पांडवनकी सेनाको देखके तब द्रोणाचार्यके समीप जाके वचन बोलतेभये ॥ २ ॥

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥

व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

दोहा-पांडवसेना अतिबड़ी, आचारजतूदेखि ॥
धृष्टद्युम्नतवशिष्यने, व्यूहरच्यौज्ञविशेखि ॥ ३ ॥

हे आचार्य ! जो तुम्हारा शिष्य बुद्धिमान् ऐसा द्रुपदका पुत्रधृष्टद्युम्न तिसकरके यथायोग्यस्थानोंपरस्थापित पांडुपुत्रोंकी इस सर्वोत्तम सेनाको आप देखो ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

दोहा-शूरधनुषधारीबड़े, अर्जुनभीमसमान ॥
द्रुपदमहारथऔरहू, हैविराटयुयुधान ॥ ४ ॥

इससेनामें जोयुद्धकरनेमें भीमअर्जुनके समान बडेधनुषधारी शूरहैं वे ये कि, युयुधान और विराट और महारथ द्रुपद ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

दोहा-धृष्टकेतुअरुकाशिपति, चेकितान बलवंत ॥
कुन्तिभोजअरुसैन्यपति, पुरुजितशञ्जानिकंत ॥ ५ ॥

धृष्टकेतु चेकितान और बली काशीका राजा तथा पुरुजित् और कुंतिभोज और नरोंमेंश्रेष्ठ शैब्य ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

दोहा-युधामन्युअरुविक्रमी, उतमौजारणधीर ॥
द्रौपदिसुतअभिमन्युये, महारथीबलवीर ॥ ६ ॥

पराक्रमी और उत्तमशक्तिवाला और धीरजवान ऐसा युधामन्यु सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और सर्व द्रौपदीकेपुत्र याने पांच ये महारथ ही है ॥ ६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

दोहा–मोसेनामेजेबड़े, तेसुनियेंद्विजराज ॥
नीकेजानौंतुमतिन्हैं, खरेयुद्धकेकाज ॥ ७ ॥

अब हे द्विजोत्तम! जो हमारेमें हमारी सेनाके श्रेष्ठ सेनापतिहैं उनको जाननेके वास्ते तुम्हारेसे कहताहौं तिन्होंको जानो ॥ ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

दोहा–तुम अरुभीषमकर्णकृप, जिनजीतेसंग्राम ॥
भूरिश्रवाविकर्णअरु, अश्वत्थामानाम ॥ ८ ॥

जोहमारी सेनामें मुख्य हैं उनमें एक आपहो और भीष्म और कर्ण और संग्रामके जीतनेवाले कृपाचार्य अश्वत्थामा और विकर्ण और तैसाही राजासोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

दोहा–औरौबहुतेशूरमा, मोलगितजैंजुप्रान ॥
भाँतिभाँतिआयुधलिये, सबैयुद्धबलवान ॥ ९ ॥

मेरेवास्तेत्यागाहैजीवनजिनने और नानाशस्त्रोंके प्रहारकरनेवाले औरभी बहुत शूर सर्व युद्ध चतुर हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

दोहा–मोसेनाअसमर्थ है, भीषमराखतताहि ॥
परसेनासामर्थ्ययुत, शासतभीमजुवाहि ॥ १० ॥

हमारी सेना भीष्मकरकेरक्षितहै तिससे असमर्थ है और इनकी यह सेना

भीमकरके रक्षितहै इससे बलिष्ठहै तात्पर्य यह कि, भीष्म उभयपक्षपाती है १०

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्वएव हि ॥ ११ ॥

दोहा–आसपासमोव्यूहके, तुमसबठाढेहोहु ॥
भीषमकीरक्षाकरहु, करिकैमनमेंकोहु ॥ ११ ॥

इससे सर्व नाकेनपर यथायोग्य भागबनायेभये खड़े रहके तुम सबही निश्चयकरके भीष्महीका संरक्षणकरो ॥ ११ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

दोहा–दुर्योधनकेहर्षको, भीष्मजुचितमेंवाइ ॥
सिंहनादउच्चैकियो, दुःसहशंखबजाइ ॥ १२ ॥

ऐसेसुनकेबडेप्रतापवान् कौरवनमेंवृद्ध पितामहभीष्म उसदुर्योधनको हर्ष उत्पत्तिकरतेकरते ऊंचेस्वरसे सिंहनादसे गर्जकर शंखको बजातेभये ॥ १२ ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

दोहा–तबैशंखभेरीपणव, आनकगोमुखभूरि ॥
ताहीछिन बाजतभए, बडोशब्दभरिपूरि ॥ १३ ॥

तब शंख और भेरी और तासे नगारे रणसिंहे एकसंगही बजतेभये सो शब्द मिश्रितभारी होताभयो ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥

दोहा–श्वेतवरणघोड़ालगे, दीरघरथहिबनाय ॥

हरिअर्जुनतापरचढे, हरषेशंखबजाय ॥ १४ ॥

तबै जिसमेंश्वेतघोड़ेजोड़ेहैं ऐसे श्रेष्ठरथपर बैठेभये कृष्ण और अर्जुन दिव्यशंखोंको बजातेभये ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

दोहा-देवदत्तअर्जुनलियो, पांचजन्ययदुराय ॥
भीमभयानकभयदियो, पौंड्रशंखबजवाय ॥ १५ ॥

तहां श्रीकृष्ण पांचजन्यको, अर्जुन देवदत्तको, भयंकरहै कर्मजिसका ऐसा वृकोदरयानेतीक्ष्णाग्निउदरवाला भीम पौंड्रनाम महा शंखको बजातेभये १५

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

दोहा-नृपतियुधिष्ठिरनेकियो, असितविजयकोघोष ॥
लयेनकुलसहदेवजे, मणिपुष्पकसुरघोष ॥ १६ ॥

कुंतीकापुत्र राजा युधिष्ठिर अनंतविजयशंखको, नकुल और सहदेव सुघोष और मणिपुष्पकशंखोंको, क्रमसे बजातेभये याने नकुल सुघोषको और सहदेवमणिपुष्पको बजातेभये ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

दोहा-तहांधनुर्द्धरकाशिपति, रथीशिखंडीजानि ॥
धृष्टद्युम्नवैराटअति, बलीसात्यकीमानि ॥ १७ ॥

श्रेष्ठधनुषवाला काशीकाराजा और महारथ शिखंडी धृष्टद्युम्न और विराट और शत्रुनकरिके अजित सात्यकि यादव ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥

सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

दोहा—द्रुपदद्रौपदीसुतसबै, औरसुभद्रापूत ॥
इनसबअपनेशंखलै, धुनिकीनीतासूत ॥ १८ ॥

हे पृथ्वीनाथ राजाद्रुपद और सर्व द्रौपदीकेपुत्र और महाबाहु अभिमन्यु ये न्यारेन्यारे शंख बजातेभये ॥ १८ ॥

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

दोहा—फटोहृदयकौरवनको, शब्दसुन्योताबार ॥
पुहुमीअरुआकाशमें, पूरिरह्योगुंजार ॥ १९ ॥

सो मिश्रितबडा ऐसा शब्द आकाश और पृथिवीको शब्दायमानकरता करता धृतराष्ट्रकेपुत्रोंके हृदयोंको विदीर्णकरताभया ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

दोहा—देखेसुतधृतराष्ट्रके, अर्जुनधनुषसँभार ॥
कपिवरताकीध्वजलसै, शस्त्रनिधरतनिहार ॥ २० ॥
अर्जुनकहीजुकृष्णसों, मेरेचितजयजीत ॥
दुहुँसेनाकेमाँहिरथ, ठाढोकरियेमीत ॥ २१ ॥

हे महीपते ! तब शस्त्रपात प्रवृत्तसमयमें कपिध्वज पांडवअर्जुन तुम्हारेपुत्रोंको युद्धार्थ खड़े देखके तब धनुषको ऊंचाकरके श्रीकृष्णसे ये वाक्य बोलतेभये कि हे अच्युत ! दोनों सेनाओंके मध्यमें मेरे रथको स्थापितकरो ॥ २० ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥

कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

दोहा-जबलगिदेखोंहौंनहीं, बड़ेयुद्धकेदाय ॥
कौनकौनसोंहौंलरौं, यारणमेंसमपाय ॥ २२ ॥

मैं प्रथमें इनैं युद्धइच्छावाले खड़ेभयेनेंको देखोंगा कि इसैं रणखेतमें मेरे साथैं कौनकेरके युद्धकरनीं योग्यहै ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

दोहा-युद्धकरणयोधाजिते आयेहैंसजिसाज ॥
दुर्बुद्धीकौरवनको,भलेकरनकेकाज ॥ २३ ॥

जो ये जितने दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्रके युद्धमें प्रियइच्छनेवाले यहां इकठे होयेहैं इन युद्धकरनेवालोंको मैं देखोंगो ॥ २३ ॥

संजय उवाच-एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेनभारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥२५॥

दोहा-ऐसेंहैं श्रीकृष्णजू, सुनिअर्जुनकीबात ॥
दोऊसेनामांझरथ, लैराख्योताघात ॥ २४ ॥
भीषमद्रोणहिआदिदै, नृपजुहुतेताठोर ॥
अर्जुनसोंबोलतभये, देखिकौरवनओर ॥ २५ ॥

संजयधृतराष्ट्रसे कहतेहैं कि, हेभारत! अर्जुनकेरके ऐसें कहेंभये श्रीकृष्ण दोनों सेनाओंके बीचमें श्रेष्ठरथको स्थापितकरके भीष्म और द्रोणाचार्य केसामने और सर्व राजाओंके सामने बोलतेभये कि, हे पार्थ! ये इकठे भये जोकुरुवंशी तिनकोदेखो ॥ २४ ॥ २५ ॥

तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ॥

आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ २६ ॥
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

दोहा—अर्जुनतेदेखेसबै, पितापितामहभाइ ॥
गुरुमामाभैयासखा, सुतनातीकेदाइ ॥ २६ ॥
श्वशुरसुहृदबांधवसकल, दोऊसेनामाँह ॥
तिन्हैदेखिकरुणाभई, तबबोलेनरनाँह ॥ २७ ॥

श्रीकृष्णजीके कहनेपर अर्जुने उसरणमें खड़ेहुए पितृ (पितासदृशभूरिश्रवादिककाका) पितामहे (भीष्म सोमदत्तादिक) आचार्य (द्रोणाचार्यादिक) मामा (शकुनिशल्यादिक) भ्राता (दुर्योधनादिक) पुत्र (द्रौपदीमें पांचोंसेभये जो पांच) पौत्र (लक्ष्मणादिकोंके पुत्र) तथा सखा (अश्वत्थामा जयद्रथादिक) ससुर (द्रुपदादिक) और सुहृद (कृतवर्मादिक) इनको देखतेभये ऐसे दोनों सेनाओंमेंभी उन सर्व बंधुनको खड़े देखि के सो कुंतीपुत्र अर्जुन अति कृपाकरके व्याप्त खेदितहोतहोते यह बोलतेभये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच ॥ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति॥वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते२८॥२९॥

दोहा—देखेमैंसबबंधुये, कृष्णयुद्धकेदाय ॥
मोमुखसूखतजातहै, अंगअंगशिथिलाय ॥ २८ ॥
रोमहर्षहैदेहमें, औरकंपबहुभाय ॥
धनुषगिरतमोहाथते, त्वचातपनिअधिकाइ ॥ २९ ॥

अर्जुन कहते हैं कि, हेकृष्ण! युद्धइच्छावाले खड़ेभये इन स्वजनोंको देखिके मेरे गात्र शिथिलहोतेहैं और मुख सूखेता है और मेरे शरीरमें कंप और रोमांच होते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

दोहा-ठाढोहैहौंनहि सकत, भ्रमतजुमोमनमीत ॥
केशवअशकुनदेखियत, कैसीहैयहरीत ॥ ३० ॥

हाथसे गांडीवधनुष गिरापरता है और त्वचाभी जरीजातीहै और खड़े-होनेकोभी नहीं सकताहौं और मेरा मन भ्रमतासरीखाहै ॥ ३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥
न च श्रेयोऽनु पश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

दोहा-स्वजनहनत संग्राममें, देखौं नहिं कल्यान ॥
विजय न चाहौं कृष्णजू, नहिंचाहौं सुखमान ॥ ३१ ॥

और हे केशव! निमित्तभी विपरीत देखताहौं और संग्राममें स्वजनोंको मारके फिर कल्याणभी नहीं देखताहौं ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥
किन्नो राज्येन गोविंद किं भोगै जीवितेन वा ३२

दोहा-वृथा भोग गोविन्दजू; जीवन अरु सुखराज ॥
राज्यभोग आनंदपुनि, करियत जिनके काज ॥ ३२ ॥

हे कृष्ण! विजय और राज्य और सुख नहीं चाहताहौं.हे गोविंद! हमारेको राज्यकरके भोगकरके अथवा जीवनेकरकेभी क्या प्रयोजन है ३२

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।३३।

दोहा–ते असुधन को त्यागिकै, आये सब संग्राम ॥
तात अचारज पुत्र अरु, पितामहा सुखधाम ॥ ३३ ॥

हमने जिनकेवास्ते भोग सुख और राज्य चाहाथा वे ये प्राण और धनोंको त्यागके युद्धमें खड़े हैं ॥ ३३ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ३४

दोहा--संबन्धी मातुल श्वशुर, सारनातिअवरेषि ॥
येमारैंमोकोयदपि, हौंनहिंहनौंविशेषि ॥ ३४ ॥

ये सर्व मेरे आचार्य पितातुल्यकाका पुत्र और तैसेंही पितामह मामा ससुर नातीपोता सांले तथा और संबंधी हैं ॥ ३४ ॥

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ३५

दोहा--राज्यतजौंतिहुँलोकको, हैकितेकयहभूमि ॥
सुतनहनौंधृतराष्ट्रके, कतसुखरहिहौंझूमि ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन ! तीनोंलोकोंके राज्यके वास्ते भी मेरेको ये मारते होयँ तौभी इनको मारनेकी नहीं इच्छाकरताहौं तो पृथिवीके वास्ते क्यों मारोंगो ॥ ३५ ॥

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

दोहा--पापहोइइनकेहने, यद्यपिलियेहथ्यार ॥
तातेयहनियेनहीं, बंधुसहितनिर्धार ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रकेपुत्रोंको मारके हमको क्या प्रसन्नता होयँगी इन आततायिनको मारके हमको पापही लगेगा ॥ आततायीलक्षण ॥ " दोहा--अग्निदेइविषदेइजो, क्षेत्रदारहरजोइ ॥ धनहरसन्मुखशस्त्रकर, आततायिषट् होइ " ॥ १ ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्त्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७॥

दोहा-कृष्णसुजनकोमारिके, सुखलहियेकिहिंनाइ ॥
एजुलुभायेलोभसों, तेदेखैयहचाइ ॥ ३७ ॥

जिससे कि, इनके मारनेका पापही होयगा तिससे हमारे बंधुधृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके वास्ते हम नहीं योग्य हैं. हे माधव! निश्चयपूर्वक स्वजनोंको मारके कैसे सुखी होयँगे ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निर्वर्तितुम् ॥
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

दोहा-कुलक्षयकीन्हेंदोषजे, औरमित्रकोद्रोह ॥
जानिबूझियापापको, किहिविधिकीजेकोह ॥ ३८ ॥
कुलक्षयकीन्हेंकुलधरम, जातजुसबैनशाय ॥
धर्मनशेसबकुलनशै, होहिअधर्मसुभाय ॥ ३९ ॥

हे जनार्दन! लोभकरके जिनके चित्त भ्रष्ट भयेहैं ऐसे ये दुर्योधनादिक कुलक्षय करनेके दोषको और मित्रद्रोहमें पापको यद्यपि नहीं देखते हैं (नहीं जानतेहैं) तौभी कुलक्षयकृत दोषको देखते भये हमकरके इस पापसे निवर्त्तहोनेकेवास्ते कैसे न जाननाचाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

दोहा-कृष्णअधर्महिकेबढे, दुखितहोहिंकुलनारि ॥
होहिंवर्णसंकरतबहि, त्रियादोषनिरधारि ॥ ४० ॥

कुलके क्षय होनेसे सनातन कुलके धर्म नाशहोते हैं फिर धर्म नष्टहोनेसे

सर्व कुलको अधर्म जीतलेती है याने कुलको अप्रतिष्ठित करदेताहै ॥ ४० ॥

अधर्माऽभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

दोहा–नरकपरेसंकरभये, कुलघातीजेलोय ॥
पतितहोहिंतिनकेपितर, पिंडदेइनहिंकोय ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण ! अधर्मकरके कुलको अप्रतिष्ठित होनेसे कुलकीस्त्रीजैन दुष्टहोवैंगी हे वृष्णिवंशोद्भव ! उन दुष्ट स्त्रीनमें वर्णसंकर उत्पन्न होयगा ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

दोहा–कुलहिवर्णसंकरभए, डारतदोषवड़ाय ॥
जातिधर्मकुलधर्मते, तेईदेतनशाय ॥ ४२ ॥

जिससे कि, जिनके पितृपिंडोदकक्रियाप्राप्तभयेविना संसारमेंपड़तेहैं इसीसे कुलघातिनके कुलको वह वर्णसंकर नरकही प्राप्तिके हेतु उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

दोहा–कुलधर्मनकेनाशते, निःसंशययहहोइ ॥
सदानरकमेंतेरहैं, कहतज्ञुयोंसबकोइ ॥ ४३ ॥

जो कुलघातीहैं उनके जो ये वर्णसंकरकारक दोष तिनकरके जातिधर्म और सनातन कुलधर्म नष्ट होतेहैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

दोहा-बड़ेपापकेकरनको, निश्चयकियोविचार ॥
चितमेंआनोराजसुख, हनकुटुम्बनिरधार ॥ ४४ ॥

हे जनार्दन ! जिनके कुलधर्मनष्टभये उन मनुष्योंका नरकमें अवश्य वास होताहै ऐसा सुनते हैं ॥ ४४ ॥

अहोबतमहत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

दोहा-करमेंलैहथियारये, आवेंमोसमुहाइ ॥
मोहिंहनैंजोसहजहीं, मानिलेहुँसुखभाइ ॥ ४५ ॥

अहोकष्ट हमे बडेपापको करनेको निश्चयकिये हैं जो राज्यसुखलोभ-करके स्वजनोंको मारनेका उद्योगकिये हैं ॥ ४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६॥

दोहा-ऐसेकहिअर्जुनतबै, बैठिगयेरथमाहिं ॥
करतेडारतशरधनुष, शोकबढतमनमाहिं ॥ ४६ ॥

जो हाथमेंशस्त्रलियेहुये धृतराष्ट्रके पुत्र अशस्त्रको और अप्रतीकारको याने जो मैंबदला नहीं लेताहौं ऐसे मेरेको रणमें मारेंगे सो मारना भी मेरा अतिकल्याणरूप होयगा ॥ ४६ ॥

संजय उवाच॥एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थउपा-विशत्॥विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनवि-
षादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—गीताहरिवल्लभकियो, भाषाकृष्णप्रसाद ॥
वीत्योपहलोध्याययह, अर्जुनकियोविषाद ॥ ४७ ॥

राजाधृतराष्ट्रसे संजयकहते हैं कि, संग्राममें अर्जुन ऐसे कहके वाणसंयुक्तधनुष डारिके शोकव्याकुलमनहुआ भया रथके पिछाड़ी जायके रथमें बैठरहताभया ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां
गीतामृततरंगिण्यां प्रथमाध्यायप्रवाहः ॥ १ ॥

संजय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

दोहा—लेउसासअँसुवाभरे, अर्जुनकरुणाभाय ॥
बहुविषादसंयुक्तलखि, बोलेश्रीयदुराय ॥ १ ॥

राजाधृतराष्ट्रसे संजयकहते हैं कि, जो प्रथमअध्यायमें करुणावाक्यकहे वैसीही कृपाकरके व्याप्त आंसुनके भरनेसे नेत्रव्याकुल विषादयुक्त उस अर्जुनसे मधुसूदन भगवान् ये वाक्य बोलते भये ॥ १ ॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

दोहा—अर्जुनयासंग्राममें, क्योंदुखपायोमीत ॥
कीरतिअरुस्वर्गहिहरें, कायरज्योंभयभीत ॥ २ ॥

जो बोले सो कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो अनारिनके सेवनेयोग्य नरकको लेजानेवाला और अपकीर्त्तिका करनेवाला ऐसा यह मोह तुमको ऐसे विषमस्थलमें कैसे प्राप्तभया ॥ २ ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥

क्षुद्रं हृदयंदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

दोहा—कायरतातूजनिकरे, यहतोकोंनहियोग ॥
छांडिकचाईहीयकी, देशत्रुनकोरोग ॥ ३ ॥

हे पृथाकेपुत्र! तुम कायरताको न ग्रहणकरो तुम्हारेमें यह नहीं योग्य है हे परंतप! तुच्छ हृदयकी दुर्बलताकोंत्यागकरके कायरताको छोडिके खड़ेहोजावो ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

दोहा—हरिजूयासंग्राममें, हैंभीषमअरुद्रोन ॥
पूजोंकैशरसोंहनों, मोसोंकहियेसोन ॥ ४ ॥

ऐसेकृष्णके वाक्यसुन अर्जुनबोलेकि, हे मधुसूदन! मैं संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्यसे बाणोंकरके कैसे युद्धकरौंगा हे अरिसूदन! येदोनोंपूजन-योग्यहैं यहां मधुसूदनकहनेकातात्पर्ययहहैकि, आप दैत्यहंता हो तो सज्जनों-से क्योंयुद्धकरातेहो अरिसूदनकहनेका तात्पर्य कि, जो शत्रुनाशकहो तो भीष्मादिकपूज्यनपर बाणप्रहारक्योंकरातेहो ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ॥ हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

दोहा—भीखमांगिवरुखाइये, गुरुहनिवोजुअनीति ॥
गुरुहिमारिभोगीकरैं, भषजिजुलोहूरीति ॥ ५ ॥

इसलोकमें अतिउत्तमप्रभाववाले गुरुनको मारेविनां भिक्षाकाअन्न भी खानेको कल्याणहीजानना और अर्थ यानेद्रव्यकीहै कामना जिनके ऐसे गुरुनको मारके रक्तसेभरेभये भोगोंको भोगोंगा ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा
नो जयेयुः ॥ यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽव-
स्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

दोहा-अहौजुहमनहिंजानहीं, हारिभलीकैजीत ॥
जिनहिंमारिहमनाजियें, तेएठाढेमीत ॥ ६ ॥

यहभी नहीं जानतेहैंकि, हमारेमें कौन बलीहै नजाने हम जीतेंगे किंवा वे हमको जीतें जिनको मारके हमजीनानहीं चाहतेहैं वे घृतराष्ट्रकेपुत्र सन्मुखही खड़ेहैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमू-
ढचेताः ॥ यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्य-
स्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

दोहा-धर्ममांझहौं मूढहौं, पूछतकृष्णस्वभाइ ॥
शिष्यतुम्हारीशरणहै, दीजैयुक्तिवताइ ॥ ७ ॥

कार्पण्ययहकि, हमइनकोमारके कैसेजियेंगे तथादोष जोकुलक्षयका दोष- इनकार्पण्य और कुलक्षयदोषोंकरके मेराक्षत्रियस्वभाव विध्वंसित भयाहै इसीसे धर्ममें भी मेराचित्तचकितभया है जैसे कि, क्षत्रियधर्मयुद्ध अथवा भिक्षान्नभोजन इनमें कौन कल्याणकारक है ऐसे चित्त चकितहै ऐसामैं तुम्हाराशिष्य तुमको पूछताहौं जो मेरेवास्ते निश्चय कल्याणदायक होय वही कहो तुह्मारे शरणागत मेरेको सिखावो ॥ ७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषण-
मिन्द्रियाणाम् ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं
सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

दोहा-भूमिलोकसुरलोकको, लहौंअकंटकराज ॥
इंद्रियशोखैहीयको, जाइनशोकसमाज ॥ ८ ॥

अरेरेरेरे! वडाअनर्थ है कि, जो पृथिवीमें शत्रुरहित संपदायुक्त राज्यको और देवताओंके भी अधिपतित्वको पायके मेरी इंद्रियनके सुखानेवाले शोकको दूरकरे उसको मैं नहीं देखताहौं ॥ ८ ॥

संजय उवाच॥एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

दोहा–ऐसेकहिश्रीकृष्णसों, अर्जुनताहीवार ॥
युद्धनहींहरिजूकरौं, कीजौयहनिर्धार ॥ ९ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहनेलगे कि, शत्रुनको संतापितकरनेवाला तथा गुडाका जो निद्रा तिसके जीतनेमें समर्थ ऐसाजो अर्जुन हृषीकेश याने इंद्रियोंके मालिक श्रीकृष्णको ऐसें कहके फिर नहीं युद्ध करौंगा ऐसें गोविंदसे कहके मौन होतेभये ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

दोहा–दोऊसेनामध्यजो, अर्जुनकियोविषाद ॥
क्रियावंतह्वैकृष्णजू, कीन्होंवचनप्रसाद ॥ १० ॥

हे भरतवंशउत्पन्नधृतराष्ट्र! दोनों सेनाओंके मध्यमें युद्धके उत्साहको त्यागिके शोककररहा जो अर्जुन तिससे हँसतेसरीखे श्रीकृष्णजी यहे याने जो आगेकहैंगे सो वचन बोलते भये ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥ गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

दोहा–शोचअशोचीक्योंकरत, कहतज्ञानकीबात ॥
शोचनपंडितकरतहैं, जीवनउपजतजात ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णभगवानने निश्चय किया कि, इसको धर्माधर्मका ज्ञान नहीं है,

इससे यह धर्मको तो अधर्म और अधर्मको धर्म मान रहा है, परंतु धर्मको जानना चाहता है सो मोह गयेविना यह कैसे जानेगा? सो मोह आत्मदर्शनविना नष्ट होनेका नहीं ज्ञानविना आत्मदर्शन होनेका नहीं; सो ज्ञान निष्कामकर्मविना होनेका नहीं और अध्यात्मशास्त्र जो आत्म–अनात्म–विवेकउपदेश याने जीव और शरीरका विवेक उसका उपदेश इस विना निष्कामकर्म हो नहीं सकता इससे अध्यात्मशास्त्रकाही उपदेश करो, ऐसा विचारके उपदेश करनेलगे. अब इस श्लोकसे लेके अठारहें अध्यायके छाँसठेक श्लोकमें जो "मा शुचः" ऐसा वाक्य है वहां पर्यंत गीताउपदेश है. तहां प्रथम भगवान् कहते हैं कि, हेअर्जुन! "त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः" याने जो शोचनेयोग्य नहीं तिनको शोचते हो और प्रज्ञावाद याने पंडितों सरीखी बातें तिनको भाषते याने कहते हो वे ऐसे कि, हमारे पितरोंके श्राद्ध और तर्पण न होनेसे वे स्वर्गसे नरकमें पडेंगे सो स्वर्गप्राप्ति और पड़ना श्राद्धादिक होने न होनेके स्वाधीन नहीं हैं; वे तो आपके करे पुण्यपापके स्वाधीन हैं "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशंति" इस प्रमाणसे वे पुण्यपापसदेह आत्माके स्वाधीन हैं. केवलदेहके स्वाधीन नहीं हैं यद्यपि पुत्रादिकोंके करेभये श्राद्धादिकोंका पुण्य प्राप्त होताहै; कारण कि, पुत्रादिक सदेह आत्मसंबंधी हैं; तथापि श्राद्ध नहोनेसे स्वर्गसे पड़ना यह कोईकालमेंभी होनेका नहीं; इसवास्ते 'गतासु' जो ये शरीर नित्य नाशधर्मी और 'अगतासु' जो जीव नित्य अमर एकरस हैं इससे "नासतोविद्यते भावो नाऽभावो विद्यतेसतः" इसप्रमाणसे पंडितजन इनका शोच नहीं करते हैं; इससे तुमकोभी शोचना अयोग्य है. "स्वेस्वे-कर्मण्यभिरतः सिद्धिंविंदतिमानवः" इस प्रमाणसे स्वधर्मयुद्धही कल्याणकारक है ॥ ११ ॥

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ॥
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

दोहा--हमतुमअरुनरराजयह, इनकोनाशनहोय ॥
तिहूँकालमेंथिररहैं, ऐसेसबकोजोय ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो आत्मा याने जीवात्मा परमात्मा हैं उनके स्वभाव सुनो. सो ऐसे कि, "अहं सर्वेश्वर इतः पूर्वमनादौ काले-जातुनासमपित्वासमेव" मैं सर्वेश्वर इस समयसे प्रथम अनादिकालमें क्या न था ? क्योंकि, निश्चयकरके था "त्वंनासीः अपितु आसीः एव" जैसा मैं था ऐसा क्या तू न था?तू भी था. "इमे जनाधिपाः किं न आसन् अपि-त्वासन् एव" ये सब राजा क्या न थे ? अर्थात् ये भी थे. "अतःपरं सर्वे-वयं किं न भविष्यामः अपितु भविष्याम एव" इस कालसे अगाड़ी क्या हम तुम ये सर्व न होयँगे ? अर्थात् होयहींगे. इससे आत्मानित्य है. शोच करना वृथा है. तथा जो यहां हम तुम और ये ऐसा कहा इससे यह सि-द्धांत भया कि, जीवात्मा और परमात्मा न्यारे न्यारे हैं यह न्यारापनाही सत्यहै. इसीसे श्रीकृष्णजीने भी उपदेश किया क्योंकि अज्ञानमोहितअर्जु-नको मिथ्याउपदेश करनेहींके नहीं. इस न्यारेपनेमें श्रुतिभी प्रमाण है सो यह--"नित्योनित्यानांचेतनश्चेतनानामेकोबहूनांयोविदधातिकामानिति" ॥ अर्थ--जो एक नित्यचेतन परमात्मा है सो बहुत नित्यचेतन जीवोंकी काम-नाको परिपूर्ण करताहै; जो कोई कहै कि, यह भेद अज्ञानकृत है तो उनसे कहना कि, यह परमार्थदृष्टिके अधिष्ठाता और आत्मयाथात्म्यसे सदा अज्ञानरहित नित्यस्वरूप परमपुरुष श्रीकृष्णमें अज्ञानकृतभेददर्शनकार्य होनेका नहीं. तोभी कोई कृष्णको अज्ञ कहै तो उनकरके उपदिष्ट गीता अप्रमाण होता है. जो कोई कहै कि, श्रीकृष्णने अभेदनिश्चय कियाहै इससे वह भेद निराकृत है; सो जले वस्त्रतुल्यबंधनकारक नहीं है. तब कहना कि, मृगतृष्णानिराकृत जानिके, फिर उसमें जल लेने न जायगा जो गया तो वह अज्ञहै. इसीतरह जो मिथ्या भेदका इसमें उपदेश दिया तो इस गीता-काभी प्रमाण न मानना चाहिये. दूसरा यह कि, भेदविना उपदेशभी नहीं

बनेगा. तथा परमात्मामें ऐसाभी होनेका नहीं कि, प्रथम अज्ञ थे शास्त्राध्ययनसे ज्ञानी भये. जिसको शास्त्राभ्याससे ज्ञान होताहै उसको कोई समयमें अज्ञानभी होता है. सो नित्यज्ञानस्वरूप श्रीकृष्णमें यहभी नहीं होसकताहै. यहां श्रुति प्रमाण हैं सो ऐसे कि, 'यःसर्वज्ञः सर्ववित् ॥ पराऽस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच ' तथा यहांभी कहेंगे ' वेदाहंसमतीतानिवर्तमानानिचार्जुन । भविष्याणिचभूतानिमांतुवेदनकश्चन ' इत्यादि प्रमाणोंसे भेदही सिद्ध होता है. भेदविना उपदेश किसको करे ? तहां कोई कहते हैं कि, अर्जुन कृष्णका प्रतिबिंब है, आपको आपही उपदेश करतेहैं. तहां कहना कि, दर्पन जल इत्यादिमें आपके प्रतिबिंबको देखके जो बातें करे सो उन्मत्त याने चित्तभ्रष्टसिर्री होताहै, उसके वाक्यभी अप्रमाण हैं, जिसको अभेदज्ञान है उसको उपदेश बननेहीका नहीं न उसके गुरुहैं. न शिष्य हैं इससे यही सिद्ध भया कि, परमात्मासे जीव न्यारे हैं ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

दोहा—बालयुवाअरुवृद्धता, यादेहींमेंहोत ॥
तैसेंदेहांतरलहै, धारनमोहनहोत ॥ १३ ॥

जैसे इस देहमें जीवकी कुमारअवस्था यौवन और जराअवस्था होतेहैं, तैसें देहांतरकी प्राप्तिभी होतीहै तहां धीर याने ज्ञानीपुरुष नहीं मोहताहै १३

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत ॥ १४ ॥

दोहा—अर्जुनइंद्रियवृत्तिमिलि, विषयजसुखदुखदेत ॥
सबेजानिनहिंथिररहै, महितिनकोयाहेत ॥ १४ ॥

हे कुंतीपुत्र ! मात्राजोइंद्रियां तिनके स्पर्श जो शब्द स्पर्श रूप रस और गंध ये शीत उष्ण याने मृदु कठोर शब्द शीतोष्ण शस्त्रप्रहारादिक और

संयोगवियोगादिक दुःखके देनेवाले अनित्य और आगमापायी याने होते जाते रहते हैं हे भारत! तुम भरतवंशीहो उनको सहनकरो ॥ १४ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

दोहा--जाकेविधानहोयकछु, सुखदुखगनैसमान ॥
यहैधीरमुक्तिहिलहै, बातयहैपरमान ॥ १५ ॥

हे पुरुषर्षभ! सुख और दुःख है सम जिसके ऐसे जिस ज्ञानीपुरुषको ये निश्चयकरके नहीं पीड़ा करतेहैं सो मोक्षजानेको समर्थ होताहै ॥ १५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

दोहा--जोहैसोविनशैनहीं, जोविनशैसोनाहिं ॥
जोइनतत्त्वनकोलखै, गनियेज्ञानीमाहिं ॥ १६ ॥

जो "गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः" इस वाक्यकरके आत्माका स्वाभाविक नित्यत्व और देहका नाशित्व समझके शोक न करना कहा उसीको अब 'नासतः' इत्यादिकरके खुलासा दृढता करते कहते हैं सो ऐसे कि, असत् जो नाशवान्है उसकी स्थिरता नहीं होतीहै और सत् जो अविनाशीहै उसका नाश नहीं होता तत्वदर्शीपुरुषोंने इन दोनोंकोभी सिद्धांत देखाहै सोई आगे दो श्लोकोंमें खुलासा कहेंगे ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

दोहा--जासोंजगयहहैभरचो, सोअविनाशीजानि ॥
जाहिविनाशिनकोसकै, ताहिआतमामानि ॥ १७ ॥

जिस आत्मतत्वकरके यह सर्व अचेतन तत्व व्याप्तहै उसको तो अविनाशी जानो ॥ इस अविनाशीका विनाश करनेको कोई नहीं समर्थहै १७

अंतवंतं इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

दोहा–अंतवंतसबदेहहैं, जीवरहतहैनित्त ॥
अविनाशीवहकहतहै, युद्धकरोंकिनिमित्त ॥ १८ ॥

जो यह जीव अविनाशी है तथा अप्रमेयहै याने यह इतनाही है ऐसा कहनेमें नहीं आताहै तथा नित्यहै याने सर्वदा एकसाहै ऐसे जीवके ये देहैं नाशवंत कहेहैं हे अर्जुन ! तिससे युद्धकरो ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चै नं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ १९

दोहा–जोयाकोहंतागिनै, हन्योकहतहैकोइ ॥
यहनमरैमारैनहीं, अज्ञानीवहदोइ ॥ १९ ॥

जो इस आत्माको मारनेवाला जानताहै और जो इसको अन्यकरके मरा मानताहै । वे दोनों नहीं जानतेहैं यह न किसीको मारताहै न किसी करके मरताहै ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्य माने शरीरे ॥ २० ॥

दोहा–यउनमरैउपजैनहीं, भयोनआगेहोइ ॥
अजरपुरातननित्यहै, मारेमरैनसोइ ॥ २० ॥

यह आत्मा कोईकालेमेंभी जन्मता और मरता नहीं यह अजन्माहै नित्य सर्वकालमेंहै पुराणे याने पहिलेथा सोभी है नवा नै भया है और फिर होने वालाभी नहीं है शरीरके मारनेपरेभी नहीं मरता है ॥ २० ॥

वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥ २१ ॥

दोहा—जोजानतहैआतमा, अजअविनाशीनित्त ॥
सोनरमारैकौनको, ताहिहतैकोमित्त ॥ २१ ॥

जो इस आत्माको अजन्मा अक्षय नित्य अविनाशी जानताहै तो हे अर्जुन ! सो वह पुरुष कैसे किसको मरवावैताहै और कैसे किसको मारताहै ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

दोहा—जैसेपटजीरणतजै, पहिरतनरजुनवीन ॥
देहपुरातनजीवतजि, नयोगहैपरवीन ॥ २२ ॥

यद्यपि शरीर नष्टहोनेसे आत्माका नाशनहीं तौभी शरीर वियोगका जो दुःख होताहै ऐसा अर्जुनका आशय जानिके भगवान्‌कहने लगे कि, जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागिके और नवीनोंको ग्रहणकरताहै ॥ तैसे जीव पुराने शरीरोंको त्यागिके और नवीन शरीरोंको प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

दोहा—यह नकटैहथियारसों, पावक सकैनजारि ॥
भिजौसकैजलनाहिंनै, सोखिसकैनबयारि ॥ २३ ॥

सर्वशस्त्रभी इसआत्माको नहीं छेदि (काटि) सकतेहैं अग्नि इसको नहीं जलाताहै ॥ जल इसको नहीं भिजोयसकताहै और पवनभी नहीं सुखाय सकताहै ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

दोहा—कटैजरैसूखैनहीं, औरनभिजवनयोग ॥
निरजनहैसवठौरथिर, अविनाशीविनरोग ॥ २४ ॥

यह आत्मा छेदनेयोग्यनहीं यह जलांने योग्य नहीं और निश्चित भिजांने सुखाने योग्यभी नहीं है ॥ यह नित्य सर्व प्रकारके शरीरोंमें जानेवाला स्थिरस्वभाव अचल और सनातनहै ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

दोहा—प्रगटनहींजुअचिंतहै, अविनाशीतूजानि ॥
ऐसोयाकोजानिकै, शोकलेशजनिमानि ॥ २५ ॥
जोतुमजानेजीवको, जन्ममरणपुनिहोइ ॥
तऊशोकतूजानिकरै, मनदृढतामेंगोइ ॥ २६ ॥

यह अतिसूक्ष्मतासे अप्रगटहै यह विचारमें नहीं आताहै यह विकाररहित कहाहै ॥ तिससे इसको ऐसा जानिके शोचकरनेको नहीं योग्यहै ॥ जोकि इसको नित्यजन्मा अथवा नित्य मरा जानोंगे ॥ तोभी हे महाभुज अर्जुन। तुमें इस आत्माको शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ २५ ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

दोहा—जोउपजैविनशैस्वई, मरैसुउपजैआइ ॥
होनहारसोहोतहै, तहाँनशोचबढाइ ॥ २७ ॥

जिससेकि, जन्मेंको मृत्यु निश्चयहै और मरेको जन्म निश्चयहै ॥ तिससे इस निरुपाय परिणाममें तुमें शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥

अव्यक्तनिधनान्येवं तत्रं का परिदेवना ॥ २८ ॥

दोहा--पाछेजाहिनजानिये, आगेपरैनजानि ॥
माँझहियहकछुदेखिये, ताकोशोचनमानि ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! मनुष्यादिके भूतप्राणी जन्मके आदिमें प्रगट न थे जन्मके पीछे मरणके आदि मध्य अवस्थामें प्रगटदीखताहै मरे पीछेभी न दीखेंगे ऐसे निश्चयसे तहां शोक कौनहै ॥ २८ ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

दोहा--जोयाकोदेखेकहैं, सोऊअचरजभाइ ॥
सुनैअचंभवसोलगै, यहजान्योनहिंजाइ ॥ २९ ॥

ऐसे देहात्मवादमें शोकका परिहारकिया अब कहतेहैं कि, देहसेन्यारे आत्मामें द्रष्टा श्रोता वक्ता और ज्ञाताभी दुर्लभहैं ॥ प्रथम कहेभये लक्षणों-करके युक्त आत्मा सर्वसेविलक्षणहै तहां कोईतपस्वीपुण्यवान् इसआत्माको आश्चर्यवत् देखताहै और तैसाही कोईआश्चर्यवत् कहता है ॥ और तैसाही और पुरुष इसको आश्चर्यतुल्य सुनताहै और कोई पुरुष इस आत्माहीको सुनिकेभी नहीं जानताहै ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

दोहा--जीवनमारयोजातहै, बसतसबनकीदेह ॥
तातेशोचनकीजिये, करिकाहूसोंनेह ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! सबकी देहमें यह जीव नित्यही अवध्यहै ॥ तिससे तुम सब भूतोंको शोचनेको नहीं योग्यहो ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ॥

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ३१॥

दोहा--अपनोधर्मविचारितू, जनिछाँड़ैसंग्राम ॥
धर्मयुद्धतेक्षत्रियहि, औरनकछुअभिराम ॥ ३१ ॥

स्वधर्मको भी देखके दयाकरनेको नहीं योग्यहो ॥ क्योंकि क्षत्रियको धर्मसंबंधी युद्धसे और कल्याण नहींहै ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

दोहा--अपनीइच्छातेलह्यो, खुल्योस्वर्गकोद्वार ॥
भाग्यवंतक्षत्रियलहैं, ऐसोरणयाबार ॥ ३२ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो आपसे प्राप्तभया और खुलाभया स्वर्गका द्वार ऐसे युद्धको पुण्यवान् क्षत्रियलोग पावते हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ॥
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥
अकीर्तिंचापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

दोहा--और धर्मसंग्रामको, जोतूकरिहैनाहिं ॥
तजिकीरतिअरुधर्मको, परिहैपापनिमाहिं ॥ ३३ ॥
सबैलोककहिहैअबै, तेरोअयशबढाइ ॥
अयशप्रतिष्ठावंतको, मरनहुँतेअधिकाइ ॥ ३४ ॥

जो कदाचित् तुम इस धर्मरूप संग्रामको न करोगे ॥ तो उससे स्वधर्म और कीर्तिकोभी छोड़के पापको प्राप्त होवोगे ॥ और लोग तुम्हारी अखंड अकीर्तिको भी कहेंगे ॥ सो अकीर्ति संभावितपुरुषके मरणसे अधिक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ॥

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ॥
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

दोहा–भयतेअर्जुनरणतज्यो, योंकहिहैंयेवीर ॥
तोहिंबहुतकरिमानते; अबलघुह्वैहौधीर ॥ ३५ ॥
तेरेअरिसबकहहिंगे, जेअनिकहिनीबात ॥
निजघटिआईकेसुने, बहुदुखलागततात ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णजीनेअर्जुनकाअभिप्रायजाना किजोमैंबंधुनके स्नेहऔर दयालुताते युद्धनकरूंगा तौमेरीअकीर्तिकैसेहोयगी याने होनेकीनहीं ऐसा जानिकेबोले कि, हे अर्जुन ! जिनकर्णदुर्योधनादिकमहारथोंके तुम शूर शत्रु ऐसेमान्य थे उनहीकेअबयुद्धनकरनेसे निंदायोग्यलघुताकोप्राप्त होवोगे वेहीमहारथशत्रु तुमको भयसे संग्राममें नकिया ऐसा मानेंगे वेही तुम्हारे शत्रु तुम्हारी सामर्थ्यको निंदतेभये बहुतसे दुर्वाक्य बोलेंगे यांनेअर्जुनकायरहै शोभाकेवास्तेशस्त्रबांधताहै जैसेस्त्रीआभूषणमेंसर्पसिंहादिकदेखिकेप्यारसेधारणकरै और साक्षात् देखिके प्राणलेकेभागे तैसे जब ऐसीनिंदाकरेंगे तब उससे बडादुःख कौन है सो कहो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ॥
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

दोहा–लरतमरतलहिहैस्वरग, जीतिपुहुमीभोग ॥
उठि अर्जुनतूयुद्धकरि, यहैजुताकोयोग ॥ ३७ ॥

उसनिंदाकेसुननेसे रणमेंमरनामारनाही श्रेष्ठहै ऐसाकहते हैं॥ हेकुंतीपुत्र, जो रणमें शत्रुप्रहारसेमरोगे भी तो स्वर्गको प्राप्तहोवोगे जोजीतोगे तो पृथिवीको भोगोगे तिससे युद्धके अर्थ निश्चय कियेभये उठो ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८॥

दोहा--लाभहानिअरुदुःखसुख, जीतहारिसमजानि ॥
तातेअर्जुनयुद्धकरि, पापलेहुजनिमानि ॥ ३८ ॥

सुख और दुःखको समानकरके तथा लाभ और हानि जय और पराजय समानजानिके फिर युद्धकेअर्थयुक्तहो ऐसे पापको नहीं प्राप्तहोवोगे ॥ ३८ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ॥
बुद्ध्यायुक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

दोहा--सांख्यबुद्धितोसोंकही, कहतयोगबुधितोहि ॥
ताबुधिकेसंयोगते, रहेनकर्मनिमोहि ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णभगवान्ने ऐसा आत्मस्वरूपदिखाया अबआत्मस्वरूप ज्ञानपूर्वकमोक्षसाधनभूतकर्मयोगकहतेहैं सो ऐसे कि, हेपृथापुत्र यह बुद्धि तुमसे मैंने सांख्यजोआत्मा देहका विवेक उसमेंकही और इसीको योगमें याने कर्मयोगमें सुनो जिस बुद्धिकरकेयुक्त कर्मबंधजो संसारदुःख उसको छोडोगे ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात् ॥ ४० ॥

दोहा--कर्मकरैविनकामना, ताकोहोइननास ॥
अल्पकियेहूधर्मयह, काटतभवभयवास ॥ ४० ॥

जो अब ज्ञानयुक्तकर्मयोगकहेंगे तिसकामाहात्म्यकहतेहैं ॥ इसज्ञानयुक्त कर्मयोगमेंयानेनिष्कामकर्मयोगमें प्रारंभकाभी नाशनहीं है याने प्रारंभहोके समाप्त नहोय तौभी नाश नहीं है इसकेछूटनेकादोषभी नहीं होताहै इस निष्कामकर्मका लवलेशमात्रभी जन्ममरणरूपबडेभयसे रक्षणकरताहै ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेह कुरुनंदन ॥
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

दोहा–बुद्धिजुनिश्चयवंतकी, एकैहैतूजानि ॥
जिनकेनिश्चयनाहिने, तिनकीबहुविधमानि ॥ ४१ ॥

हे कुरुनंदन ! व्यवसायजोविष्णुपरमात्मातिनमें है आत्मानाममनजिनकाऐसेपुरुषोंकीबुद्धि इसनिष्कामकर्ममेंहीमें वहएैकहैयानेएकमोक्षसाधनहीकेवास्ते है जो अव्यवसायीयानेपरमात्माविनानानापदार्थपशुपुत्रादिकोंकेचाहनेवाले हैं उनकी बुद्धि बहुतहै यानेअनेककामनाओंमें लगीहै ॥ और तहांभी बहुशाखा यानेऐककार्यकेवास्तेकर्मकरके उसमेंभी अनेकफलमांगतेहैं जैसे पुत्रार्थयज्ञमें धनधान्यआयुष्यआरोग्यका मांगना ॥ ४१ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ॥
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

दोहा–वेदहिमानतस्वर्गफल, तेअज्ञानीलोइ ॥
कहतजुयोंकछुऔरनहिं, तिनमेंज्ञाननहोइ ॥ ४२ ॥
स्वर्गलाभकीकामना, रहतजुतिनकेचित्त ॥
भोगबड़ाईकेलिये, करतक्रियासोंहित्त ॥ ४३ ॥
भोगबडाईकामना, तिनकोचितहरिलेत ॥
निश्चयकरितेबुद्धिको, नहिंसमाधिमेंदेत ॥ ४४ ॥

हे पृथापुत्र ! जो अज्ञानीजनवेदवादरतयानेवेदोक्तकर्मसेस्वर्गादिकफलहीहोताहै ऐसे कहनेवाले स्वर्गसुखके समान और सुख नहीं है ऐसा कहनेवाले कामनाहीमें चित्तरखनेवाले स्वर्गहीको श्रेष्ठमाननेवाले जिसे पुष्पितयानेकहनेमात्रमेंरमणीय जन्मकर्मरूपफलकीदेनेवाली तथा जिसमेंभोग और ऐश्वर्यनिमित्त

बहुतउपकरणयानेकर्मसाधनहैं जिसमें ऐसी ईसी वाणीको कहतेहैं इसीसे इसीवाणीकरके अपहरणभये हैं चित्तजिनके इसीसे भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तहैं उनकेमनमें वह परमात्मविषयकबुद्धि नहीं प्रवर्तहोतीहै४२।४३।४४

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

दोहा–त्रिगुणकर्मकोकहतहैं, वेदसुतजितूमित्त ॥
धीरजधरिसुखदुःखसहि, योगक्षेमतजिचित्त ॥ ४५ ॥

हे अर्जुन! वेदये त्रैगुण्यविषयहैं याने तीनों गुणोंके कर्म नहीं कौनकहते हैं तुमनिर्द्वंद्वयाने सुखदुःखजयपराजयलाभअलाभ इनद्वंद्वनसे रहितहो अर्थात् इनसेउत्पन्नहर्ष शोकरहितहो नित्यसत्त्वस्थहो यानेसात्त्विककर्मकरो निर्योगक्षेमयानेकोइसाभीलाभऔरलब्धकारक्षणईश्वराधीननजानो आत्मवान्याने परमात्मामेंचित्तराखो ऐसेभयेहुयेनिस्त्रैगुण्यहोयानेकर्मफलोंकात्यागकरो ४५

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

दोहा–सरितासागरकूपसों, सरतजुएकेकाज ॥
तैसेजानेब्रह्मको, लहतवेदकेसाज ॥ ४६ ॥

जो कहाकिवेदोक्तकर्मोंमेंसेतुमसात्त्विककरोउसीकोखुलासाकहतेहैं जैसे सर्वत्रजलसेभरेभये तालाबइत्यादिकजलाशयमें मनुष्यका जितनाप्रयोजन होता है उतनाहीलेताहै तैसेही वेदके जाननेवालेको सर्व वेदोंमें तावान्याने सात्विककर्महीयोग्यहै ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥
माकर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

दोहा–तोअधिकारिजुकर्ममें, नहींफलनसोंहेत ॥
कर्मनिकेफलछाँडिदे, करिसुकर्मगहिचेत ॥ ४७ ॥

तुम्हारेको कर्महीमेंअधिकारहै फलोंमें नहीं कर्मोंकेफलकाकारणं तुम्हारेमें कोईसमयमेंभी मति हो तुम्हारेको अकर्मयानेस्वधर्म योग्ययुद्धादिकमोंकानकरना इसमें संगजो निष्ठासो कदाचित् नहो ॥ ४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

दोहा--योगस्थितिह्वैकर्मकरि, सबैसंगकोत्यागि ॥
सिद्धिअसिद्धिसमानगिनि, यहैयोगअनुरागि ॥ ४८ ॥

हे अर्जुन ! सिद्धि और असिद्धिमेंसमबुद्धिहोकेकर्मफलकेसंगकोत्यागिके योगमेंस्थितभयेहुए कर्मोंको करो सिद्धि और असिद्धिमेंजोसमत्वहै वही योगकहा है अर्थात् चित्तकेसमाधानत्वको योगकहते हैं तात्पर्य चित्तको समाधानकरके युद्धरूपस्ववर्णोचितकर्मकरो ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

दोहा--बुद्धियोगतेकर्मको, अर्जुनतूघटिजानि ॥
शरणहोहुताबुद्धिकी, दीनकामनामानि ॥ ४९ ॥

हे अर्जुन ! जो बुद्धियोगसे औरकर्महै सो निश्चयकरके अत्यंत नीचहै इसवास्ते बुद्धियोगजोनिष्कामकर्मउसीमें ईश्वरप्राप्तिकी इच्छाकरो फलकी इच्छाकरनेवाले कृपणहैं ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ५०

दोहा--बुद्धियोगदोऊतजे, कहापुण्यकहापाप ॥
योगकर्ममेंचतुरई, सोईकरितूआप ॥ ५० ॥

बुद्धियुक्तजोनिष्कामकर्मीसो इसीलोकमें सुकृतजोपुण्यकर्म और दुष्कृ-

तजोपापकर्म उनदोनोंको त्यागताहै इससे योगकेअर्थ याने बुद्धियोगजो निष्कामकर्मउसकेवास्ते युक्तहो यहयोग सर्वकर्मोंकेकुशलं कारकहै॥ ५०॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥ ५१ ॥

दोहा-चाहतनहिंतेकर्मफल, जेपंडितबड़भाग ॥
कर्मबंधकोछाँडिकै, लहतमुक्तिअनुराग ॥ ५१ ॥

जो बुद्धियोगयुक्तहैं वेज्ञानी कर्मजन्य फलको त्यागके जन्मबंधनसेमुक्त-गयेहुए निश्चयकरके मोक्ष पदको जातेहैं ॥ ५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

दोहा-मोहसघनताजबतजै, अर्जुनतेरीबुद्धि ॥
तबपैहौवैराग्यको, चितमेंकरिकैशुद्धि ॥ ५२ ॥

जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूपदुःखको उल्लंघनकरैगी तब जोफलादिकसुन-नेयोग्य और जोसुनेहों उनके वैराग्यको प्राप्तहोवोगे ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

दोहा-तेरीबुद्धिविरागमें, स्थिररहिहै जबमित्त ॥
तबसमाधिमेंयोगलहि, हैतूनिश्चलचित्त ॥ ५३ ॥

जब तुम्हारी बुद्धि श्रुतिमेंयानेमेरेउपदेशमेंविशेषकरकेआसक्त निश्चल मनमें अचल ठहरेगी तब योगको पावोगे ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच ॥

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ॥
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

दोहा-जाकिबुद्धिनिश्चलसदा, ताकेचिह्नबताय ॥
कैसेबोलतक्योंरहत, चलतजुहैकिहिं भाय ॥ ५४ ॥

ऐसासुनिकेअर्जुनबूझतेभये कि, हेकेशव! यानेसर्वकेअंतःकरणमेंरहनेवाले हेईश्वर! स्थिरबुद्धि समाधिस्थकी कौनसी भाषा याने उसकावाचककौनहै अर्थात्‌वहस्थिरबुद्धिकिससेकहाताहै स्थिरबुद्धि कैसे बोलताहै कैसे बैठता है और कैसे चलताहै ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

दोहा-जैहैमनकीकामना, तिनकोतजैजुकोइ ॥
आतमसोसंतोषगहि, निश्चलबुद्धिसुहोइ ॥ ५५ ॥

अबश्रीकृष्णभगवान्‌स्थिरबुद्धिवालेकास्वरूपकहतेहैंतहाँऐसान्यायहैकि, रहनिरीतिसेभीस्वरूपनिश्चयहोताहै इससे रहनिरीतिकहतेहैंसो ऐसे कि, हेअर्जुन! जब आपकेमनकरके आपस्वरूपहीमें संतुष्टभया हुआ मनमेंरहेभये सर्व मनोरथोंको सर्वथात्यागताहै तब वह स्थिरबुद्धि कहाताहै ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दोहा-दुखकोतजिभाजैनहीं, सुखचाहैनहिंचित्त ॥
तजैनेहअरुक्रोधभय, निश्चलबुद्धिसुमित्त ॥ ५६ ॥

दुःखोंमेंजिसका मनव्याकुलनहींहोताहैसुखोंमेंनिराशहोताहैऔरजिसके पुत्रादिस्नेहभयऔरक्रोधनहोयसोमुनिस्थिरबुद्धिकहाताहै ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्राऽनभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाऽशुभम् ॥
नाऽभिनंदति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५७ ॥

दोहा-नेहनकाहूसोंकरै, भलेबुरेकीचाहि ॥

भलेवुरेसोंकाजनहिं, स्थिरवुधिलखियेताहि ॥ ५७ ॥

जो सर्वत्रस्नेहरहित उसेउस शुभाशुभको पाइकेभी न शुभसेआनंदहो न अशुभसेदुःखीहो तवँ सो स्थिरवुद्धि कहाताहै ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्य स्तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

दोहा-ज्योंकछुवा निजअंगको, खैंचिआपमेंलेत ॥
तैसेखैंचेइंद्रियनि, तजिविषयनसों हेत ॥ ५८ ॥

जव यहँ, कछुवा जैसे अपने सर्व अंगोंको समेटिलेताहै तैसे इंद्रियोंके विषयनसे आपकी सर्वइंद्रियोंको खैंचिलेताहै तव उसकी वुद्धि स्थिरहोतीहै ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्ज्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ ५९ ॥

दोहा-विषयकरतहैदूरिसों, तजतजुहैआहार ॥
आत्मादेखेजातुहै, अभिलाषानिर्धार ॥ ५९ ॥

इंद्रियनके आहार इंद्रियविषयउनकोजोनहींसेवताहैउसके विषयानुरागविना विषयेनिवर्त्तहोतेहैं वहविषयानुराग आत्मस्वरूपको देखके निश्चयें निवर्त्तहोताहै ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥ वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दोहा-ज्ञानवंतजेपुरुषहैं, जतनकठिनतासाधि ॥
इंद्रियअतिवलवंतहैं, तऊलगावतव्याधि ॥ ६० ॥

तातेंरोकेइंद्रियनि, मोमेंचित्तलगाय ॥
वशकीनीजिनियेसबै, सोथिरबुद्धिस्वभाय ॥ ६१ ॥

हे कुंतीपुत्र ! आत्मदर्शनविनाविषयानुरागनिवर्त्तहोतानहींऔर उसकीनिवृत्तिविनाजोज्ञानी पुरुष बुद्धिकीस्थिरताकेवास्तेयत्नकरताहै तोभी जिससे ये जोरावरीसेमनकोहरनेवाली इंद्रियां जबरईसे मनको हरतीहैं ॥ इससे योगयुक्तभयाहुआ उन सर्वइंद्रियोंको नियमितकरके मेरेआश्रय रहे जिसके इंद्रियां वशहैं तिसकी निश्चयकरके बुद्धि स्थिररहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ॥
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।६२। ६३ ॥

दोहा--जबधावतहैंविषयको, तिनसोंउपजतसंग ॥
कामजुउपजतसंगते, तातेंक्रोधअभंग ॥ ६२ ॥
मोहहोतहैक्रोधते, क्रोधहितेसुधिनाश ॥
शुद्धिगयेबुद्धीनशति, बुद्धिनशेमृतिपास ॥ ६३ ॥

बाह्यइंद्रियनकीप्रबलताऔरउनकोवशनकरनेमेंजोदोषसोकहा अब मनसंबंधीकहतेहैं जोपुरुषमनवशकियेविनाजितेन्द्रियताचाहताहै, सो होनेकीनहीं जैसेकि, जिसके मनमें विषयोंका चितवनहै उस पुरुषको उनविषयोंमें संयम करतेकरते भी आसक्ति होगी उस आसक्तिसे अभिलाषा होगी अभिलाषासे क्रोध होगी क्रोधसे मतिभ्रम होताहै मतिभ्रमसे स्मरणशक्तिमें विभ्रम होताहै स्मृतिविभ्रमसे ज्ञानका नाश ज्ञानके नाशसे स्वरूपसे नष्टहोताहै याने संसारमें भ्रमताहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ॥ आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ प्रसादे सर्व-

दुःखानां हानिरस्योपजायते ॥ प्रसन्नचेतसो ह्याशु
बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

दोहा-रागद्वेषकोजोतजे, करैविषयकीसेव ॥
इंद्रियजोनिजवशिकरै, लहैशांतिकोभेव ॥ ६४ ॥
शांतिजबहियहगहतुहै, होतदुखनकीहानि ॥
बुद्धितबहिंथिरहोतहै, यहतुमलीजोजानि ॥ ६५ ॥

वश्यहैमनजिसका ऐसा पुरुष रागद्वेषकरके रहित और आपके वश्य ऐसी इंद्रियोंकरके विषयोंकासेवनकरताभया प्रसन्नताकोप्राप्तहोताहै यानेनिर्मलांतःकरण होताहै तब निर्मलचित्तहोनेसे इसके सर्वदुःखोंका नाश होताहै उस प्रसन्न चित्तवालेकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होतीहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ॥
न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

दोहा-योगविनाबुधिहीनहीं, बुधिविनहोइनध्यान ॥
ध्यानविनाशान्तीनहीं, ताविनसुखनसुजान ॥ ६६ ॥

अयुक्तजोसमतारहितहै उसकी बुद्धि नहींस्थिर होतीहै और उसअयुक्तके भावनायानेआस्तिकता सोभी नहीं होतीहै और जिसकेभावना नहीं उसके शांति नहीं जिसके शांतिनहीं उसको कहांसेसुखहोगा ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

दोहा-इंद्रियजितजितफिरतहैं, निजमनलावतखैंचि ॥
मनुजबुद्धिहरलेतिहैं, वायुनांवजोऐंचि ॥ ६७ ॥

जिनइंद्रियरोकींसबै, ठौरठौरमेंआनि ॥
विषयत्यागहीजिनकियो, थिरबुधिताहीमानि ॥ ६८ ॥

जिससे कि, जो मन विषयमेंप्रवर्त्ते इंद्रियोंको अनुहरताहै सो इस पुरुषकी बुद्धिको वायु जलमें नावको ऐसे हरताहै तिसीसे हे महाबाहो जिसकी सर्व इंद्रियाँ इंद्रियोंके विषयोंसे सर्वथा रोकीभई हैं तिसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

दोहा-जोजनजागतहैतहां, जहाँसबनकीराति ॥
जीवजहांजागतसबै, सोमुनिकोनिशिभाति ॥ ६९ ॥

सर्वभूतप्राणीमात्रोंकी जोरात्रि अर्थात् जिसविषयमें सर्वसोएसे रहेहैं ऐसीपर मात्मविषयाबुद्धि तिसमें इंद्रियसंयमी जागताहै याने आत्मस्वरूपको देखताहै जिसशब्दादिविषयरूपरात्रिमें सर्व भूत (प्राणी) जागतेहैं सो ज्ञानीजनकी रात्रिरूप है ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्व-त् ॥ तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

दोहा-जैसेसबजलसरितको, मिलतसमुद्रहिआय ॥
ज्योंसमाहिंसबकामना, शांतिरहैतहँआय ॥ ७० ॥

जैसे आपहीपरिपूर्ण सर्वदा एकसेभरेभये समुद्रमें जल बाहरसे भरताहै तैसे जिसको सर्व कामना प्राप्तहोयहैं सो शांतिको प्राप्त होताहै जोकाम-नाओंकी इच्छाकरनेवालाहै सो नहीं शांतिको पावताहै ॥ ७० ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

दोहा-तजकैसबमनकामना, जोनिसप्रेहीहोइ ॥
अहंकारममतातजे, तामहँशांतिजुहोइ ॥ ७१ ॥

जो पुरुष सर्व अभिलाषनको छोड़के इच्छारहित विचरताहै सो ममता-रहित और अहंकाररहितभयाहुआ शांतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥
स्थित्वाऽस्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्य-
योगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

दोहा-ब्रह्मज्ञानतोसोंकह्यो, तातेमोहनशाइ ॥
सोबुधिअंतसमयरहे, मिलैब्रह्ममेंजाइ ॥ ७२ ॥

हेपृथापुत्रअर्जुन ! यहजोनिष्कामकर्मरूप मैंनेकही सो ब्रह्मप्राप्तिकारक-स्थितिहै इसको पाके नहीं मोहकोपावताहै इसमें अंतकालमेंभी स्थितहोके ब्रह्मसदृशमुक्ति पावै अर्थात् जो सर्वकाल ऐसाही रहै उसकी मुक्तिको संदेह-क्याहै ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां
गीतामृततरंगिण्यां द्वितीयाऽध्यायप्रवाहः ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ॥
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

दोहा-बुद्धिभलीहैकर्मते, कृष्णकहीतुमजोहि ॥
कर्मभयानकमेंकहा, केशवडारतमोहि ॥ १ ॥

ऐसे श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुनने विचार किया कि, भगवाननें

प्रथम मेरेको 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं' इत्यादिवाक्योंकरके ज्ञानयोग उपदेश किया फिर 'बुद्धिर्योगेत्विमांश्रृणु' इत्यादिकरके कर्मयोगउपदेशकिया उसमेंभी 'श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला' इत्यादिकरके निष्काम-कर्मसे आत्मज्ञानहीकी प्राप्तिकही इससे निश्चय होताहै कि, कर्मयोगसे जो पीछे आत्मज्ञान कहा सोई श्रेष्ठहै ऐसे विचारके अर्जुन भगवानसे कहने लगे कि, हे जनार्दन! जो कि, कर्मयोगसे ज्ञानयोगही तुमने श्रेष्ठ मानाहोय तो हे केशव! घोर कर्ममें मेरेको क्यों युक्तकरतेहो ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ॥
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

दोहा-वचनसुनेसंदेहके, मोबुधिहैभरमाँति ॥
निश्चयकरिएकैकहौ, लहौंमुक्तिजाभाति ॥ २ ॥

ऐसे मिश्रित वाक्यकरके मेरी बुद्धिको मोहतेसेहो जिसकरके मैं कल्याणको प्राप्तहोऊं सो एक निश्चयकरके कहो ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ॥
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

दोहा-निष्ठाजोद्वैभाँतिकी, पहिलेकहीबनाय ॥
शुद्धनकोज्ञानैभलो, कर्मनुकर्मबताय ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वाक्यसुनके श्रीकृष्णभगवान् बोलतेभये। हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें पूर्वकालमें मैंने दो प्रकारकी निष्ठा कहीहै सो सांख्य-वालेको ज्ञानयोगकरके और योगिनको कर्मयोगकरके ॥ ३ ॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

दोहा-कर्मविनाकीनेपुरुष, ज्ञानहिलहैनकोइ ॥

कियेविनासंन्यासके, दोऊमुक्तिनहोइ ॥ ४ ॥

शास्त्रोक्तकर्मोंके किये विनां पुरुषं निष्कर्मता जो सर्वेंद्रियविषयनिवृत्तिपूर्वकज्ञाननिष्ठा उसको नहीं प्राप्तहोताहै और कर्मके न करनेसेभी सिद्धिको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

दोहा—कर्मकर्मविनछिनकहूं, रहैनकोऊजंतु ॥
विवशभयेकर्मनिकरै, बाधैमायातंतु ॥ ५ ॥

कोईकालमें क्षणभरभी कर्मकियेविना कोईभी पुरुष निश्चय करके नहीं रहता है क्योंकि सर्वसत्त्वादिप्रकृतिके गुणोंकरके परवश कर्म करनाही पड़ता है ॥ ५ ॥

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ॥
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

दोहा—कर्मेंद्रियरोकेरहै, मनविषयनकोध्यान ॥
कपटीमूरखहैबड़े, ताकोमूरखमान ॥ ६ ॥

जो ज्ञानयोगमें प्रवर्त्तहोनेको कर्मेंद्रियोंको हठसे संयममें रखके इंद्रियविषयोंको मनकरके सुमिरतासुमिरता रहता है सो मूढमति मिथ्याचार याने वृथायोगी कहाता है ॥ ६ ॥

यस्त्विंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

दोहा—मनसोंरोकेइंद्रियनि, कछुकर्मनिपरिचाइ ॥
फलअभिलाषाकामजे, तातेंयहअधिकाइ ॥ ७ ॥

और जो इंद्रियोंको मनसे नियममें रखके विषयोंमें आसक्त न भयाहुवा कर्मेंद्रियोंकरके कर्मयोगको करता है हे अर्जुन ! सो श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

दोहा-अनकरिवेकेकर्मकहँ, भलेसुतूकरिमित्त ॥
विनकीनेतेकर्मके, देहनानिवहैमित्त ॥ ८ ॥

तिससे तुम स्ववर्णउचित कर्म करो क्योंकि कर्म नकरनेसे कर्मकरना श्रेष्ठहै और कर्मविनां तुम्हारा ज्ञानयोग करनेको शरीरनिर्वाहभी न सिद्ध होगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ॥
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

दोहा--यज्ञकर्मबिनकर्मते, जगबंधनतेहोत ॥
तिहिकाजैकर्मनिकरो, मेटिफलनकोगोत ॥ ९ ॥

जो कर्मसे बंधन कहाहै सो ऐसा कि, जो यज्ञार्थकर्म है उससे अन्यत्र कर्म करनेसे यह मनुष्य कर्मबंधनको प्राप्तहोता है हे कुंतीपुत्र! तुम फलासंग छोडेभये उस यज्ञहीके अर्थ कर्म करो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१० ॥

दोहा-यज्ञसहितरचिजगतको, कहीविधाताबात ॥
उदयतुम्हारोयज्ञते, कामधेनुयहतात ॥ १० ॥

प्रजापतिजोपरमात्मासो पुरा याने सृष्टिकालमें यज्ञसहित प्रजाको उत्पन्न करके बोले कि,इस यज्ञकरके तुम वृद्धिको प्राप्तहोउ यह यज्ञतुम्हारे इच्छितकामनाओंको पूरनेवाला होउ ॥ १० ॥

देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

दोहा–यज्ञनकरिदेवनियजो, देवतुम्हैंफलदेहु ॥
बुद्धिपरस्परयोंकरो, मनवांछितफललेहु ॥ ११ ॥

इसयज्ञकरके तुमदेवताओंकोपूजिके उनकोवढावो वे तुम्हारे पूजेवढाये भये देव तुम्हारा मनोरथ पूरतेभये तुमको वढावेंगे ऐसे परस्परवढातेभये तुम और देवता दोनों श्रेष्ठ कल्याणको प्राप्तहोवोगे ॥ ११ ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

दोहा–इष्टभोगकोदेतहैं, देवयजेतेमित्त ॥
विनपूछेतेलेतहैं, देहैंचोरनचित्त ॥ १२ ॥

जोयज्ञकरोगेउसकरकेवर्द्धितकियेभये देवे तुमको इच्छित भोग निश्चयकरके देंगे उनकरके दियेभयेभोगोंको उनको दियेविना जो भोगेगा सो चोर है इससे चोरतुल्य दंड पावेगा ॥ १२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥१३॥

दोहा–यज्ञशेषजेखातहैं, पापनडारतधोइ ॥
यज्ञविनाजोखातहैं, अघनिलहतुहैंसोइ ॥ १३ ॥

देवादिपूजनरूपयज्ञका शेष याने उबरेभये अन्नादिकके भोगनेवाले संतपुरुष सर्वपापोंकरके मुक्त होतेहैं और जो आपहीकेवास्ते अन्नको पचातेहैं वे पापी पापजैसाहोयतैसाही खातेहैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

दोहा-जीवअन्नतेहोतहैं, अन्नमेहतेहोइ ॥
मेहयज्ञतेहोतहैं, यज्ञकर्मतेसोइ ॥ १४ ॥
कर्मजोउपजतवेदते, वेदब्रह्मतेमानि ॥
ब्रह्मजुभासतजगतमें, ताहियज्ञकरिमानि ॥ १५ ॥
वेदबतायेकर्मते, नरनकरतजेकोइ ॥
पापीइंद्रियवशभये, जनमरहतहैखोइ ॥ १६ ॥

अबदिखातेहैंकि, लोकदृष्टिऔरशास्त्रदृष्टिसेभीसर्वकामूलयज्ञहीहैसो ऐसेकि सर्वभूतप्राणी अन्नसे होतेहैं अन्नकीउत्पत्ति वर्षासेहै सो लोकप्रसिद्ध देखनेमें आताहै वर्षा यज्ञसे होतीहै यहशास्त्रप्रसिद्ध है सो यह श्लोक ॥ " अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततः प्रजाः "॥ १ ॥ यज्ञकीउत्पत्ति यज्ञकर्त्ताकेकियेभयेकर्मसे होतीहै सोकर्म-ब्रह्मसे होतीहै ऐसेजानो ब्रह्मनामप्रकृति इहां प्रकृतिहीकारूपशरीरब्रह्मजानना तहां प्रथमश्रुतिः "तदेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नंच जायते" तथा इहांभीकहेंगे " मम-योनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम्"इत्यादिप्रमाणोंसेयहां यहीअर्थहैकि, प्रकृतिकोब्रह्मकहतेहैंउसीकापरिणामयहशरीरइससे कर्महोताहै यहशरीर अक्षरसे-मुद्भवयानेअक्षर जो जीवतिसकरकेसहितउत्पन्नहोताहै यानेसजीवशरीरकर्म-काकारकहै जिससेकि, शरीरहीकर्मकारकहै इसीसे सर्वगतंयानेसर्वाधिकार-योग्य शरीर यज्ञमें नित्यं प्रतिष्ठितं है याने यज्ञका मूलकारण है ऐसे यहईश्वरकरके प्रवर्तमान इसचक्रको जोकर्माधिकारी किंवाज्ञानकर्माधिकारी नहीं अनुवर्त्तताहै यानेयज्ञविनाशरीर पोषताहै हेअर्जुन ! सो इंद्रियारांम पापआयुष्य वृथा जीवतेहै जोचक्रकहा उसकाखुलासा यह कि, अन्नसे शरीर अन्न वर्षासे वर्षा यज्ञसे यज्ञ कर्मसे कर्म शरीरसे शरीर अन्नसे ऐसे प्रवर्त्ते है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

दोहा–आतमसोंसंतुष्टजे, आतमसोंरतिहोइ ॥
त्रिपतिजुआतममेंरहैं, ताहिनकरनोकोइ ॥ १७ ॥
जाहिकरेतेपुनिनहीं, विनकीन्हेंनहिंदोष ॥
ब्रह्मादिकसोंकाजनहिं, आतमहीसोंमोष ॥ १८ ॥

कर्मनकरनेसेकिसकोदोषनहींसोकहतेहैंसोऐसाकि, जो मनुष्य आत्मरतिहो याने आत्मस्वरूपहीमें आनंदहोय और आत्मस्वरूपही से तृप्त हो अन्नादिकसेप्रयोजननहीं और आत्माही में संतुष्टहो उसके कर्त्तव्यतो नहीं है उसके कर्मकरनेसे नकरनेसे भी यहां कुछ प्रयोजन नहींहै और इसके सर्वभूतप्राणिनमें कोईऐसाभीनहीं जिससे कुछप्रयोजनहोय तात्पर्य ऐसामनुष्यकर्मकरै अथवा न करै तो चिंतानहीं ॥ १७ ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

दोहा–फलकामनिकोछाँडिकै, कर्मकरौतुमनित्त ॥
संगविनाकर्मनकरै, भक्तिलहतहैमित्त ॥ १९ ॥

जिससेकि, ऐसेकोदोषनहींतुमतोद्रव्यकुटुंबादिसेरतहोइसंसेकर्ममें असक्तनभयेहुये करनेयोग्य स्ववर्णोचितकर्मको निरंतर करो क्यों कि फलेच्छारहित कर्म करतेकरते पुरुष परमात्माको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

दोहा-लहीसिद्धिजनकादिहू, कीन्हेंकर्मसमाज ॥
लोकरीतिजेदेखिकै, तुमहूकरोसुकाज ॥ २० ॥

अबयहदिखातेहैं कि, ज्ञानीकोभीकर्महीश्रेष्ठहैसोऐसेजिससेकि, जनकादिकज्ञानीभी कर्मकरकेही मोक्षको प्राप्तभये तथालोकसंग्रहको भी देखतेभये कर्मकरनेकोयोग्यहो ॥ २० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

दोहा-बड़ेकुआचारहिकरैं, सोईमानैंआन ॥
ताहीमगसबजगचलै, बड़ेकरैंजुप्रमान ॥ २१ ॥

यहांकारणयहहैकि, श्रेष्ठपुरुष जोजो आचरण करतेहैं दूसरे लोगभी वैसाहीआचरणकरतेहैं सो श्रेष्ठपुरुष जोप्रमाणकरताहै सर्वलोगभी वही प्रमाणकरने लगतेहैं ॥ २१ ॥

न मे पार्थाऽस्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

दोहा-मोकोकछुकरनोनहीं, तिहूँलोकमेंकाज ॥
कछुनलह्योलहिबेनकछु, कर्मकरतयासाज ॥ २२ ॥

हेपृथापुत्रअर्जुन! तीनोंलोकोंमें मेरेको कुछ कर्त्तव्य नहीं है तथा नहींप्राप्तऐसाभीनहीं औरप्राप्तहोयऐसाभीनहींअर्थात्सर्वमेराहीहै तथापि कर्ममें निश्चयकरके वर्त्तमान रहताहौं याने लोगोंकोसिखानेको कर्म करता रहताहौं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः ॥
मम वर्त्मानुवर्त्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

दोहा-जोहूंकर्मनिनहिंकरौं, रहुँआलसहितमीत ॥
त्योंहीसबनरहूरहैं, मेरेमनयहरीत ॥ २३ ॥

हे अर्जुन! जोकदाचित् सावधान भयाहुआ मैं कर्ममें न वर्त्तमान रहौं तो निश्चयकरके सर्व मनुष्य मेरीही रीतिपर चलनेलगैं याने वे भी निरर्थ मानके कर्म नकरैं ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

दोहा—जोहौंकर्मनिनहिंकरौं, होयसबनकोनाश ॥
प्रगटऊंसंकरतबै, हनौंप्रजायाआस ॥ २४ ॥

जोकदा चित् मैं कर्म नकरौं तौ येलोकभीऐसेजानेंगे कि, जोकर्म श्रेष्ठहोतातोश्रीकृष्णकरतेइससेकर्मतुच्छहै ऐसाजानके कर्मछोड़केनष्टहोंगे तब मैं वर्णसंकरका कर्त्ताहोऊंगा और इसप्रजाका मारनेवाला होऊंगा ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

दोहा-मूरखजोकर्मनिकरै, करिबहुप्रीतिसुभाय ॥
लोकलाजज्ञानीकरै, मनतासोंनलगाय ॥ २५ ॥

हेअर्जुन! जैसे अविद्वान्लोग कर्ममें आसक्तभयेहुये कर्म करतेहैं तैसे विद्वान् असक्तभयाहुआ लोकसंग्रहको करनेकीइच्छाकियेभये कर्म करे २५

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

दोहा—तिनकीबुधिभेदनतजै, रहैकर्मलपटाय ॥
सावधानज्ञानीरहै, पोषेतेईदाय ॥ २६ ॥

जोज्ञानीहै सो ज्ञानयोगयुक्तभयाहुआ कर्मकरताकरता जोकर्मसंगी अज्ञानीहैं उनको सर्वकर्मोंकी प्रीति उपजावै याने उनसे प्रशंसाकरके कर्म करावै और बुद्धिभेद याने कर्ममें अश्रद्धा न करावे ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्त्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

दोहा--मायाकेगुणकरतहैं, सबैकर्मयहजानि ॥
अहंकारकरिमूढजे, लेतअपनपौमानि ॥ २७ ॥
गुणअरुकर्मविभागको, जानततत्त्वज्ञुकोय ॥
इंद्रियविषयनकोपगी, आपुमगनहीहोइ ॥ २८ ॥

हेअर्जुन ! सर्व कर्म प्रकृतिके सत्त्वादिगुणोंकरके कियेभयेहैं जो अहंकारसे मूढचित्तहै सो मैं कर्त्ताहौं ऐसे मानताहै और जो सत्त्वादिकगुण और इनके कर्मके तत्त्वकाज्ञाताहै सो जानताहैकि, सत्त्वादिगुणआपआपकेकार्योंमें वर्त्तमानहैं ऐसा जानकेआसक्त नहीं होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

दोहा-मायागुणकरिमूढजे, रहैं विषयलवलाइ ॥
तामगतेज्ञानीतिन्हैं, देहनकहूँचलाय ॥ २९ ॥

प्रकृतिकेसत्त्वादिकगुणकार्योंकरके भूलेभये जोपुरुष वे सत्त्वादिगुणोंकर्मफलोंमें आसक्तहोतेहैं उन अल्पज्ञमंदोंको सर्वज्ञपुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करै ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

दोहा-चितअध्यातमआनिकै, कर्मनिमोमहिराखि ॥
अहंकारममतातजो, युद्धहिकोअभिलाखि ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! अध्यात्मजोस्वभाव 'स्वभावोध्यात्मउच्यते' इसप्रमाणसे क्षत्रियकाजोशूरत्वादिकस्वभावहै उसमें चित्तको लगायेभये उस करके सर्वकर्म

मेरेमें अर्पणकरके निराशी याने फलाशारहित निर्मम याने कर्त्तापनका ममत्वछोड़के कर्मबंधनभयरूपज्वरसे छुटेभये युद्धकरो ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ॥
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेपि कर्मभिः ॥३१॥
ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

दोहा—जेनितयामेरेमतहि, श्रद्धासोंगहिलेत ॥
जिनकेजियनिहकर्म्महै, कर्मकरैकरिचेत ॥ ३१ ॥
जोयामेरेमतहिको, करतनदोषलगाय ॥
तेमूरखजानतनहीं, हैअचेतकेभाय ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य इस मेरेमतको नित्य धारणकरतेहैं और जोइसमें श्रद्धाहीरखतेहैं और जो इसकीनिंदारहितहैं वेभी कर्मबंधनोंसे छुटेंगे और जो इस मेरेमतकी निंदाकरतेभये इसकोग्रहणनहींकरतेहैं वे सर्वज्ञानविषयमेंमूढ उन अज्ञानिनको नष्टभये जानो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किंकरिष्यति ॥ ३३ ॥

दोहा—ज्ञानवंतहूकरतहैं, अपनीप्रकृतिसमान ॥
सबकोऊजिनप्रकृतिवश, एकैतेजुअज्ञान ॥ ३३ ॥

जो ज्ञानवान्है सोभी आपकेजातिस्वभावकेसदृश चेष्टाकरताहै अज्ञकरेतो शंकाहीक्याहै सर्वभूतप्राणी आपकेजातिस्वभावकोअनुसरतेहैं यहां निग्रहक्याकरेगा ॥ ३३ ॥

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौव्यवस्थितौ ॥
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

दोहा-सबइंद्रियकोविषयमें, रागद्वेषजोहोय ॥
तिनकेवशनरजाइनहिं, रहैजुअरिसमजोय ॥ ३४ ॥

जबकर्मस्वभावहीसेहै और उसका निग्रहनहीं तब उपायक्या सोकहतेहैं कर्मेंद्रियऔर ज्ञानेंद्रिय इनके निमित्तरागद्वेष युक्तहैं तिनके वशमें न होना क्योंकि वे इसकेशत्रुहैं याने जीवकेबंधनकारकरागद्वेषहीहैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मे निधनंश्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

दोहा-न्यूनहोयजोनिजधरम, परतेअधिकौमानि ॥
मीचभलीनिजधर्ममें, पारधर्मभयजानि ॥ ३५ ॥

जोरागद्वेषकेवशहोनेसेस्वधर्मकात्याग और परधर्ममें निष्ठाहोतीहै उसका निवारणकरतेभये श्रीकृष्णकहतेहैं सोऐसेकि नेत्रादिइंद्रियोंकीप्रीतिसे अर्जुन स्वधर्मोंको त्यागनेलगे कि इनस्वजनोंको देखके मेरेदयाआतीहै इससेयुद्धन-करूंगा भीखमाँगिखाउँगा सोनिवारतेहैं जैसे कि, श्रेष्ठकर्मारंभ अन्यकेधर्मसे स्वधर्म न्यूनभी कल्याणकारकहै स्वधर्ममें मरना कल्याणदायकहै परधर्ममें मरनेसेभी अतिभयकारक है ॥ ३५ ॥

अर्जुनउवाच ।

अथ केनप्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

दोहा-कहियेप्रेरेकौनके, पुरुषकरतहैंपाप ॥
याकेइच्छानाहिनै, कर्मदेतसंताप ॥ ३६ ॥

अर्जुनभगवान्से पूछतेहैं कि, हे वृष्णिवंशोत्पन्नकृष्ण ! आपने कहा स्व-धर्महीश्रेष्ठहै अन्यधर्मभयदायकहै ऐसा जो जानताभीहै और स्वधर्मपूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवर्तहोके विषयभी त्यागेहैं तौभी फिर यह पुरुष विषयइच्छा

नकरताभी बलात्कार विषयोंमें युक्तकिया सरीखा किसका प्रेराभया पापोंको करता है ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

दोहा–यहजुकामअरुक्रोधहै, रजगुणहीतेहोय ॥
क्योंहूपूरणहोइनहिं, पापीकोअरिजोय ॥ ३७ ॥

अर्जुनका प्रश्नसुनकेश्रीकृष्णभगवान्कहतेहैं कि, जोयह रजोगुण से प्रगट काम यानेकामनासो बडापापी अतिविषय सेवनरूपबडेआहारकाकरनेवाला यही क्रोधरूपहोताहै इसको इसज्ञानविषयमें वैरि जानो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

दोहा–आगिढपैज्योंधूमसों, दर्पणमलकेभाय ॥
गर्भत्वचासोंजोढके, जगैनताहीदाय ॥ ३८ ॥

जैसे अग्नि धुवाँकरकेढकताहै और मलकरके दर्पण ढकताहै जैसे गर्भ जराकरके तैसे यहज्ञान उसकामनाकरके ढकाहै ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौंतेय दुःपूरेणानलेनच ॥ ३९ ॥

दोहा–ज्ञानीहूकेज्ञानइन, वैरीराख्योझाँपि ॥
कामसुदुःसहअग्निहै, सकैनकोऊढाँपि ॥ ३९ ॥

हे कुंतीपुत्र ! इसज्ञानीकानित्यवैरीदुःखसे भीनभरसके इससेअपरिपूर्ण इच्छाचारी ऐसेइसकामकरके ज्ञान ढकरहाहै काम याने विषयवासना ॥ ३९ ॥

इंद्रियाणि मनोबुद्धिरस्याऽधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

दोहा-इंद्रियमनअरुबुद्धिहै, एईजाकोस्थान॥
इनकरिसोनाशतजुहै, ज्ञानीहूकोज्ञान॥ ४० ॥

जबशत्रुकोजीतनाहोयतबप्रथमउसकेस्थानस्वाधीनकरनाइससेइसकामनाकेस्थानकहतेहैं सो वेये कि, सर्वइंद्रियां मन और बुद्धि येकामनाके स्थानकहतेहैं यहे ईनहींकरके ज्ञानको आच्छादितकेरके जीवको मोहित करता है॥ ४०॥

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥ ४१॥

दोहा- अर्जुनतातेप्रथमहीं, तूइंद्रिनकोरोकि॥
हरतज्ञानविज्ञानजो, यापापीकोठोकि॥ ४१॥

हे भरतवंशिनमेंश्रेष्ठ! तिससे तुम प्रथमें इंद्रियोंको संयममेंकरके स्वरूप ज्ञानऔरविज्ञानजोभक्तिइनकेनाशनेवालेइसकामपापीको निश्चय मारो॥ ४१॥

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः॥
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ ४२॥

दोहा-इंद्रियहैंसबतेपरे, तिनतेपरमनजोय॥
मनतेपरेजुबुद्धिहै, तातेआतमहोय॥ ४२॥

जोज्ञानकेविरोधिहैंउनमेंविद्वान्लोगइंद्रियोंकोप्रबलकहते हैं इंद्रियोंसे मनप्रबलहै और मनसे बुद्धिप्रबलहै और जो बुद्धिसे प्रबलहै सो, वह आत्माहै॥ ४२॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ ४३॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नामतृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

दोहा-आतमलखिबुधितेपरे, मनकोकरिवशमाँह ॥
कामरूपअरिदुसहको, मारिडारिनरनाँह ॥ ४३ ॥

हे महाभुजअर्जुन ! ऐसेबुद्धिसे पर आत्माको जानकर और स्वेच्छाधारी दुःसह कामनारूप शत्रुको जानके फिर मनको बुद्धिकरके रोंकके इस शत्रुको मारो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायांश्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां तृतीयोध्यायप्रवाहः ॥ ३ ॥

प्रकृतिसंसर्गी मुमुक्षू सहसा ज्ञानयोगाधिकारी नहीं होसकता है इससे तीसरे अध्यायमें उसको कर्म करनाही उपदेश तथा ज्ञानयोगीकोभी कर्तृत्वत्यागपूर्वक कर्म करनाही उत्तम कहा और जनसंग्रहके वास्तेभी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा. अब जो जगत् उद्धारके वास्ते मन्वंतरके आदिमें इसीकर्मयोगका उपदेश कियाथा उसीका इस चौथे अध्यायमें दृढ करते हैं. ज्ञानयोगभी इसीके अंतर्गत है; इससे इसकी ज्ञानयोगाकारता दिखायके कर्मयोगका स्वरूप और भेद तथा उसमें ज्ञानांशकी प्रधानता तथा इसीप्रसंगसे भगवदवतारनिश्चयभी कहते हैं ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

दोहा-यहयोगहमैंकह्यो, पहिलेरविसोंआय ॥
तिनहूँतबमनुसोंकह्यो, मनुइक्ष्वाकुसुनाय ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि जो यह योग मैंने तुमसे कहा सो केवल अब युद्धोत्साहवढानेको तुम्हारेहीसे नहीं कहा इसको कल्पकी

आदिमेंभी कहा है सो सुनो ॥ मैं प्रथम इस अव्यय कर्मयोगको सूर्यसे कहताभया सूर्य वैवस्वर्तमनुसे कहतेभये मनु इक्ष्वाकुसे कहतेभये ॥ १ ॥

एवंपरंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

दोहा–परंपरायायोगको, जानतहैऋषिराय ॥
बहुतदिनावीतेभयो, सांख्ययोगनशाय ॥ २ ॥

ऐसेहीपरंपरासेप्राप्त इसको राजऋषि जानतेभये हेपरंतप ! सो यह योग इससमयमें बहुत कालकरके नष्टभया था ॥ २ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

दोहा–वहैपुरानोयोगमैं, तोकोदियोबताय ॥
यातेतूमोमीतहै, औरभक्तिकेभाय ॥ ३ ॥

सोईयह पुरातन योग मैंने तुम्हारेसे आज कहा क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखाहो यह उत्तम रहस्यहै ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

दोहा–तुमतौप्रगटेहोअबहिं, सूरपुरातनदेव ॥
तुमकबतासोंहोकह्यो, हौंजानोयहभेव ॥ ४ ॥

ऐसे सुनिके अर्जुन कहने लगे कि, तुम्हारा जन्म अभी भया विवस्वानका जन्म प्रथमभया तुम आदिमें उनको कहतभये ऐसे इसको हम कैसे जाने ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

दोहा-तेरेअरुमेरेजनम, बीतेहैंबहुबार ॥
तूतिनकोजानतनहीं, हौंजानतनिरधार ॥ ५ ॥

अर्जुनके प्रश्नका श्रीकृष्ण भगवान् उत्तर देतेहैं इसीमें आपके अवतार-काभी प्रयोजन कहेंगे सो ऐसे कि, हे परंतप याने शत्रुनको संतापित करने-वाले अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुतजन्म व्यतीतभयेहैं उन सबको मैं जान-ताहौं तुम नहीं जानतेहो ॥ ५ ॥

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

दोहा-अजअविनाशीप्रगटहौं, जगतईशकरतार ॥
अपनीइच्छालेतहौं, शुद्धसत्त्वअवतार ॥ ६ ॥

यहांकारणयहकि, मैंअविनाशीसर्वांतर्यामीहौंसर्वभूतोंकाभी ईश्वर भयो-हुवा तथाअजन्मा भयाँहुवाभी मेरा स्वभावजो सौशील्य वात्सल्यशरणाग-तरक्षकत्वइत्यादिकतिसको आश्रितकरके यानेउसस्वभावहीसे आपकेज्ञान-सहित अवतारलेताहौं जीवकोज्ञाननहींरहताहै मेराज्ञानअखंडहैमैंकेवलस्वभा-वसेतुरक्षणार्थअवतारलेताहौं इसका कारण अगाड़ीके श्लोकोंमेंहै ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

दोहा-जबजबभारतधर्मकी, ग्लानिहोतदिखराय ॥
बढतअधर्मजहाँतहाँ, तौहौंजनमतआय ॥ ७ ॥

हेभारत ! जब जब निश्चयपूर्वक धर्मकी हानि अधर्मकी वृद्धि होती है तब मैं रूपको धारणकरताहौं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

दोहा–साधुनकीरक्षाकरौं, पापीडारौंमारि ॥
स्थापतरीतिसुधर्मकी, युगयुगमाँझविचारि ॥ ८ ॥

जोस्वस्वभावसेअवतारकहा वहस्पष्टकरते हैं धर्महानिअधर्मवृद्धिदेखके मैं साधुनके संरक्षणकेवास्ते और दुष्टनके विनाशकेवास्ते युग युगमें धर्मस्थापनके लिये अवतारलेताहौं ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

दोहा--मेरेजन्मऽरुकर्मको, तत्वलहैजोजानि ॥
देहतजैमोकोमिलै, बहुरिनजनमैंआनि ॥ ९ ॥

हेअर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्ययानेअप्राकृतनहीं हैं ऐसे जो निश्चयकरके जानताहै सो देहको त्यागिके फिरिके जन्म नहीं लेताहै मेरे को प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

दोहा–रागक्रोधभयकोतजै, मोमेंराखैभाय ॥
बहुतज्ञानतपकरिसुजन, मोहीमाँझसमाय ॥ १० ॥

व्यतीतभयेहैंसांसारिकअनुरागभयऔरक्रोधजिनकेतथासर्वत्रमेरेहीकोमानतेहैं औरजोमेरेहीआश्रितहैं ऐसे बहुत मेरेस्वरूपज्ञानरूपतपकरके पवित्रहुऐभये मेरीसदृशताको प्राप्तभये हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

दोहा–जोमोकोजैसेभजै, हौंतैसोफलदेत ॥
अर्जुननरसबजक्तमें, मेरोमगगहिलेत ॥ ११ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! सर्वे मनुष्यममवर्त्मयानेजोजोसकामनिष्काम वेदमें-मार्गकेहैंवेमेरेहीकेहेमार्गहैं. उन्हींमार्गोंके आश्रितकर्मकरतेहैं तहां जो मेरेको जैसे भजतेहैं मैं उनको वैसेही भजताहौं; याने जो सकामइंद्रादिरूपमेरेको भजतेहैं उनको ॥ ‘ तदेवाग्निस्तत्सूर्यअहंहिसर्वयज्ञानांभोक्ता ’ ॥ इत्यादि प्रमाणसे इंद्रादिलोकपुत्रादिकामनादेताहौं और जोनिष्काममेरेकोसर्वेश्वर जानकेसर्वकर्म ‘कायेनवाचामनसेंद्रियैर्वा’ इत्यादिप्रमाणसेमेरेअर्पणकरतेहैं उनको मेरेस्वरूपवैभवको प्राप्तकरताहौं ॥ ११ ॥

काङ्क्षंतः कर्मणां सिद्धिंयजंत इह देवताः ॥
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

दोहा--कर्मसिद्धकीचाहकरि, पूजतिदेवनिलोय ॥
कर्मनिकीनरलोकमें, सिद्धिवेगदेहोय ॥ १२ ॥

जोकर्मोंकीसिद्धिकीइच्छाकरतेभये इसलोकमें देवताओंकायजनकरतेहैं उनकीनिश्चयँकरके शीघ्र मनुष्यलोकमें कर्मसे उत्पन्नं सिद्धि होती है ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥ १३॥

दोहा--चारोंवर्णजुमैंरचे, करिगुण कर्म विभाग ॥
हौंयाकोकरतारहौं, ताहिमोहिंअनुराग ॥ १३ ॥

गुणकर्मविभागसेजैसेसत्वगुणप्रधानब्राह्मणउनकेशमदमादिकर्म सत्वरज-प्रधानक्षत्रियउनकेशूरत्वादिकर्म रजस्तमःप्रधानवैश्य उनके कृषिवाणिज्यादिकर्म तमःप्रधानशूद्रउनकेपरिचर्यात्मक कर्म ऐसेगुण कर्मविभागकरके चातुर्वर्ण्य यह संसार मैंने सृजाहै उसका अविनाशीकर्त्ता भी मेरेको अकर्त्ता जानो ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते १४॥

दोहा-कर्मनमोकोलगतहैं, मोहिंनफलकीचाह ॥
ऐसोजोमोकोलखे, कर्मनबाँधैताह ॥ १४ ॥

जो प्रथमकहा कि, मेरेको अकर्त्ताजानो उसका कारण कहतेहैं सो ऐसा कि, मेरेको कर्मफलमें इच्छा नहीं इससे मेरे कर्म नहीं लिप्तहोतेहैं ऐसो मेरेको जो जानताहै सो कर्मोंकरके नहीं बँधता है ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

दोहा-जोचाहतहैमुक्तिको, कर्मकरैतिनआय ॥
तातेतूहूंकर्मकरि, पहिलनिकोमतपाय ॥ १५ ॥

पूर्वसमयके मनुइत्यादिक मुमुक्षुजनोंने भी ऐसे जानके कर्म कियेहै तिससे तुमें पूर्व मुमुक्षुनेंकरके कियेभये कर्म हीको करो ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६

दोहा-कौनअकर्मसुकर्मको, रहितपंडितौमोहिं ॥
मुक्तिकाजसोइकर्मकरि, कहेदेतहौंतोहिं ॥ १६ ॥

कर्म क्याहै और अकर्म क्याहै ऐसे इसविषयमें कविजन भी मोहेतेभये सो कर्म मैं तुम्हारेको कहूँगा जिसको जानके संसारसे मुक्त होगे ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

दोहा-जान्योचहियेकर्महूं, औरविकर्मस्वभाय ॥
मुनिअकर्मगतिलीजिये, गहनकर्मकेदाय ॥ १७ ॥

जिस वास्ते कि कर्म यानेकरनेयोग्य कर्म उसका रूपभी जानना चाहिये और विकर्म जिस एककर्ममें विविधप्रकारहै उसकारूपभी जानना चाहिये

और अकर्म जो निश्चयात्मकबुद्धिकरके केवल ईश्वराराधनार्थ निष्कामकर्म उसका भी रूपजानना चाहिये इसवास्ते कर्मकी गति दुर्गम है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

दोहा-कर्मनमाँझअकर्मजे, लखैअकर्मनिकर्म ॥
बुद्धिवंततिनसबकिये, मेटेमनकेभर्म ॥ १८ ॥

अब कर्म और अकर्मकास्वरूपजाननाकहतेहैं जो प्रारंभितकर्ममें अकर्म याने आत्मज्ञान देखे याने इस निष्कामकर्महीसे ज्ञानहोयगा इससे यहज्ञानहीहै और जो मनुष्य अकर्म जो आत्मज्ञान उसमें कर्म याने यह कर्मसे भया कर्मही है ऐसा देखनेवालामनुष्य मनुष्योंमें बुद्धिमान् है सो योगी और सोई सर्वकर्मोंका करनेवालाहै ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥ १९ ॥

दोहा-जाकेसबआरंभनिज, विनाकामनाहोत ॥
पंडितत्यहिपंडितकहत, दहतकर्मकेगोत ॥ १९ ॥

जो कर्म प्रत्यक्ष कररहेहैं उसकी ज्ञानाकारता कैसी होगी सो कहते हैं सो ऐसी कि, जिसके सर्व लौकिक वैदिककर्मोंके आरंभ कामना संकल्प रहितहैं ज्ञानरूप अग्निकरके दग्धभये हैं बंधककर्म जिसके उसको विद्वान्जन पंडित कहते हैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥ २० ॥

दोहा--कर्मफलनिछोडेसदा, तृप्तकरैनहिंआस ॥
ताकोकर्मनिकर्महूँ, लगैनभवकीफाँस ॥ २० ॥

जो कर्म फलका संबंध छोड़के निरंतर आत्मस्वरूपहीमें तृप्त नश्वर संसारके आश्रयरहित कर्ममें प्रवर्त्तभी है तोभी सो कुछ नहीं करताहै ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

दोहा-जीतेइंद्रियदेहनहिं, कामपरिग्रहजाहि ॥
देहकाजकर्मनिकरै, पापनलागतताहि ॥ २१ ॥

जो कर्मफलकी आशारहित चित्त और मन जिसका संयममेंहो जिसने परमात्म प्रीतिविना और सर्व उपासना त्यागीहोसो केवल शरीरसंबंधी कर्मको करतां भया कर्मबंधनरूप पीडाको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ॥
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

दोहा-यथालाभसंतोषजो, दुखसुखलखैनकोय ॥
सिद्धअसिद्धौएकसो, कर्मबंधनहिंहोय ॥ २२ ॥

जो आपही आय मिले इतनेही लाभसे संतुष्टहो और जो सुख दुःख लाभालाभ जयपराजय हर्षशोक इत्यादिक द्वंद्वों करके रहित होये मत्सर जो दूसरेका सुख न सहना उस करके रहित कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें सम बुद्धिसो कर्म करके भी नहीं बंधनपावे ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

दोहा-तजैसबैजोकामना, ज्ञानलगावैचित्त ॥
यज्ञकाजकर्मनिकरै, सोनबाँधियेमित्त ॥ २३ ॥

निवृत्तभयाहैआत्मानंदविनासंगजिसका और संसारवासनासे मुक्त है और आत्मज्ञानमें अवस्थित है चित्त जिसका सो जो यज्ञकेअर्थ कर्म करे तो उसके बंधनकारक सर्व प्राचीनकर्म नाशहोते हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

दोहा–होमअग्निहविब्रह्महै, अर्पब्रह्मनिजानि ॥
जायब्रह्ममेंसारहै, कर्मसमाधिहिठानि ॥ २४ ॥

निष्कामकर्मसे ज्ञानहोताहै इस भेदसे कर्मकीज्ञानाकरताकही अब परमात्माके अनुसंधानसे उसी निष्कामकर्मकी ज्ञानाकरताकहतेहैं सो ऐसे कि, जिसकरकेहव्यअर्पणकरते हैंवहस्रुवादिकवस्तुब्रह्महै याने ब्रह्महीका कार्य है घृतादिक हव्यभीब्रह्महीहै ब्रह्मरूपअग्निमें वह ब्रह्मरूप हव्य ब्र॰रूप होता करके होमाजाताहै ऐसेयहसर्वब्रह्मरूपहै तिसे ब्रह्मकर्मनियमकरके ब्रह्महीं प्राप्त होनेयोग्यहै ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

दोहा–देवनिकोइकयजतहैं, करतयज्ञबहुभाय ॥
एकब्रह्ममेंयजतहैं, ज्ञानयज्ञकेदाय ॥ २५ ॥

ऐसेकर्मयोगकीज्ञानाकारताकहकेअबकर्मयोगकेभेदकहतेहैं अपरे 'अकारोवैविष्णुः' इसश्रुतिप्रमाणसेजोविष्णुपरायणहैंवे योगी देवयज्ञ यानेप्रतिमापूजनरूपयज्ञ करतेहैं इनसे औरभीऐसेहीयोगी ब्रह्मात्मकअग्निमें यज्ञसाधन सामग्रीकरके हवनात्मक यज्ञहीमें हवन करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

दोहा–एकजेहोमतइंद्रियनि, संयमअग्निस्वरूप ॥
विषयनिहोमतएकहै, इंद्रियअग्निअनूप ॥ २६ ॥

और कितने योगी श्रोत्रादिक इंद्रियोंको संयमरूप अग्निमें होमतेहैं अर्थात् श्रोतादिकोंको हरिकीर्त्ति श्रवणादिकहीमें युक्त करतेहैं और कितै-

नेक शब्दादिक विषयोंको इंद्रिय रूप अग्निमें होमतेहैं याने हरिकीर्त्तन-विना और श्रवणादिक नहीं करतेहैं ॥ २६ ॥

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

दोहा--जेसबइंद्रिनकेकरम, औरकर्मसबप्रान ॥
होमतसंयमअग्निमें, प्रकटकरौचितज्ञान ॥ २७ ॥

और कितने योगी सर्व इंद्रियनके कर्मोंको और प्राणोंके कर्मोंको ज्ञान करके प्रदीप्त ऐसे मनके संयमरूप अग्निमें होमतेहैं. अर्थात् मन करके इंद्रिय प्राण कर्मवृत्तिनको संसार विषयसे निवारण करके आत्म ज्ञानमें लगानेका यत्न करतेहैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः शंसितव्रताः ॥ २८ ॥

दोहा--एकयजतहैंद्रव्यसो, एकतपस्यायोग ॥
एकजुपढिवेदहियजे, एकज्ञानसोंलोग ॥ २८ ॥

और कितने योगी द्रव्यसे यज्ञ करतेहैं. याने दानादिक करतेहैं. कितनेक उपवासादिक रूप यज्ञ करतेहैं. तैसेही और कितनेक पुण्य क्षेत्रादि वास रूप योग करतेहैं और कितने दृढव्रती यती याने यत्न शील वे वेदाध्ययन वेदार्थविचाररूप यज्ञ करतेहैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ॥
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टाऽमृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

दोहा–होमअपानहिप्राणमें, प्राणअपानहिमाह ॥
प्राणअपानहिरोकिकै, रहतजुहैनरनाँह ॥ २९ ॥
प्राणनहींमेंप्राणको, होमततजिआहार ॥
एसबजानतयज्ञको, मेटतपापविकार ॥ ३० ॥
यज्ञशेषअमृतहिभखत, होतजुब्रह्ममेंलीन ॥
यहौलोकाबिनयज्ञनाहिं, परलोकोहेछीन ॥ ३१ ॥

और कितनेक कर्मयोगी प्रमाणसे आहार करनेवाले जैसे कि, आधा-पेट अन्नसेभरै चौथाई जलसे और चौथाई वायुसंचार निमित्त खालीराखै ऐसे और प्राणायाम परायणहैं ऐसे योगी अपानमें प्राणको होमते हैं याने पूरक करतेहैं; ऐसेही कितनेकं प्राणवायुमें अपानको होमतेहैं याने रेचक करतेहैं. ऐसेही और प्राण अपान दोनोंकी गतिको रोकके प्राणोंको प्राणन-हीमें होमतेहैं याने कुंभक करतेहैं; इतनेये सर्वभी यज्ञके जाननेवाले यज्ञक-रके पापरहित यज्ञहीका शेष अमृतरूप अन्नके खानेवाले सनातन ब्रह्मको प्राप्त होतेहैं. हे कुरुवंशिनमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जो यज्ञ नहीं करताहै उसको यह लोकभी नहीं है और परलोकतो कैसे होयगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

दोहा–बहुतभाँतिवेदनकही, यज्ञसर्वएमानि ॥
तेसबजानहुकर्मतें, लेहुमुक्तिसुखखानि ॥ ३२ ॥

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमें विस्तारसे कहेहैं उन सबको कर्मजजानो याने वे कर्महीसे होतेहैं, ऐसे जानिके कर्म करके मुक्तहोवोगे ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

दोहा-द्रव्ययज्ञतेहोतहैं, ज्ञानयज्ञइहभाय॥
जितेकर्मवेदनिकहैं, ज्ञानहिरहितसमाय॥ ३३॥

हे परंतप! द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठहै, कारण कि, द्रव्ययज्ञकाभी फल ज्ञानहींहै हे पार्थ! फलसहित सर्वकर्म ज्ञानमें समाप्त होताहै; याने इस ज्ञानहींकेवास्ते यज्ञ करतेहैं॥ ३३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया॥
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ ३४॥

दोहा-कीजैबहुतेनरमता, प्रश्नरुसेवाभाँति॥
तौज्ञानीउपदेशिहैं, ज्ञानजिनैदेशांति॥ ३४॥

सो ज्ञान तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुमको उपदेशेंगे तुम उनकी सेवा करके और सत्कारपूर्वक नमस्कार करके उनसे प्रश्न करके जानो॥ इहां श्रीकृष्णभगवान्ने केवल ज्ञानी जनोंकी प्रशंसा निमित्त यह वाक्य कहाहै और "अविनाशितुतद्विद्धि" इहांसे लेके "एषातेभिहितासांख्ये" इहां पर्यंत ज्ञान उपदेश तो करही चुकेहैं॥ ३४॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥३५॥

दोहा-अर्जुनतूयाकोलहै, रहिहैब्रह्मसमाहिं॥
सबजीवनिकोदेखिहै, आपमाँझकेमाहिं॥ ३५॥

हे पांडुपुत्र! जिसज्ञानकोजानिके ऐसे मोहको फिर नहीं प्राप्तहोगे. जिसज्ञानकरके सर्व भूतप्राणिमात्रको आपसदृश देखोगे. जैसे कि, प्रकृतिसे भिन्न ये परज्ञानाकारतासे सर्व समान हैं आप सदृश देखे पीछे फिर मेरे समान देखोगे याने ज्ञान प्राप्त भये जीव मेरी समताको प्राप्त होतेहैं सो आगे कहेंगे भी. "इदं ज्ञानमुपाश्रित्यमम साधर्म्य मागताः"॥ इहां ब्रह्मसूत्र भी प्रमाणहै "भोगमात्र साम्यलिंगाच" ऐसेही श्रुति भी प्रमाण है

" तथा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमां शांतिमुपैति" ॥ इत्यादि प्रमाणोंसे नाम रूप रहित याने सूक्ष्मावस्थामें आत्मा और परमात्माकी स्वरूप समता निश्चय होती है ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

दोहा-सवपापिनसेंजोवडो, पापीतूहीहोय ॥
ज्ञानवानकरिचढिउतरि, पापासिंधुसमजोय ॥ ३६ ॥

जोकि, सर्व पापिनसे भी तुम बडे पापकारक होउगे तौभी इस ज्ञान रूपही नौका करके सर्व दुःख समुद्रको तरोगे ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

दोहा-जैसेज्वालहुताशकी, डारतिसवहीजारि ॥
ज्ञानअग्नित्यांप्रवलहै, एरितिकर्मतिवारि ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधनको समग्र भस्म करताहै तैसे विज्ञानरूप अग्नि सर्व कर्म बंधनको समग्र भस्म करताहै ॥ ३७ ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

दोहा-ज्ञानसदृशतिहुँलोकमें, पावननाहींऔर ॥
योगसाधनाजोकरै, लहैज्ञानकीठौर ॥ ३८ ॥

इस लोकमें निश्चय करके ज्ञान सदृश पवित्र नहीं है उसे ज्ञानको कुछ काल कर्म करते करते कर्मयोगसे सिद्ध भया हुवा आपहीमें आपही प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

दोहा—इंद्रिजीत श्रद्धासहित, पावैऐसोज्ञान ॥
तापायेततकालही, पावेशांतिसुज्ञान ॥ ३९ ॥

ज्ञान प्राप्तिमें लगा भया इंद्रियोंको संयममें किये भये श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होताहै उस ज्ञानको पाइँके थोड़ेही कालमें परम शांतिको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

दोहा—जोमूरखश्रद्धाविना, ताकोहोइविनाश ॥
जाकेहियसंदेहहै, सोदोउलोकनिराश ॥ ४० ॥

जो अज्ञानहै और ज्ञान प्राप्तिमें श्रद्धाको भी नहीं धारण किये हैं और मनमें संशय रखताहै सो नष्ट भ्रष्ट संसारमें भ्रमताहै जिसके मनमें संशयहै उसको यह लोक सुखदायक नहीं है परलोक भी नहीं है उसको कहीं भी सुख नहीं है ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

दोहा—मोकोअरपैकर्मकरि, करिसंदेहीदूरि ॥
ज्ञानीबँधैनकर्मसों, रहैसदासुखपूरि ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! परमेश्वराराधन रूप जो निष्काम कर्म योग उस योग करके परमात्माके अर्पण किये हैं कर्म जिसने और ज्ञान करके संछिन्न भये हैं संशय जिसके ऐसे स्थिर चित्त ज्ञानीको कर्म नहीं बंधन करतेहैं ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यास-योगो नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-संदेहजुअज्ञानतैं, उपज्योअर्जुनआहि ॥
ज्ञानखड्गसोंकाटिकरि, दूरिकरोकिनताहि ॥ ४२ ॥
हरिवल्लभभाषाकह्यो, गीताभाषाभाय ॥
तामेंपूरणभयोसुख, करिचौथोअध्याय ॥

हे भरतवंशोत्पन्न अर्जुन ! तिससे जो अज्ञानसे उत्पन्न तुम्हारे हृदयमें स्थित ऐसे इस आपके संशयको ज्ञानखड्गसे छेदनकरके उठो और कर्मयोगमें प्रवर्त्तहोउ याने क्षत्रियकाकर्म युद्धकरो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां चतुर्थोऽध्यायप्रवाहः ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ॥
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

दोहा-कबहुँकहतसंन्यासको, कबहुँकर्मकोयोग ॥
निश्चयकरिएकैकहो, मेटोकिनभवरोग ॥ १ ॥

श्रीकृष्णको अर्जुन पूँछते हैं कि, हे कृष्ण ! कर्मोंका संन्यास जो ज्ञानयोग उसको और फिर कर्मयोगको कहते हो इन दोनोंमें जो निश्चयकिया भैया श्रेष्ठहोय उसीको कहो. जैसे कि, दूसरे अध्यायमें कहा कि मुमुक्षुप्रथम कर्म करके अंतःकरण शुद्धभये पर ज्ञानयोग करके आत्मदर्शनका उपायकरे तीसरे चौथेमें ज्ञानीको भी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा, ऐसे दोनों कहतेहो जो इन दोनोंमें श्रेष्ठहो सोई कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥ २ ॥

दोहा–कर्मयोगसंन्यासअरु, एदोऊशुभदेन ॥
कर्मयोगसंन्यासमें, कर्मनलहियेचैन ॥ २ ॥

जब अर्जुनने प्रार्थना की तब श्रीकृष्ण भगवान् बोले सो ऐसे कि, संन्यास जो कर्मका त्याग और कर्म योग ये दोनों कल्याणकारक हैं. तिनमेंसे भी कर्मके त्यागसे कर्मयोग विशेष श्रेष्ठहै ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि नकांक्षति ॥
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

दोहा–द्वेषतजैंचाहहितजैं, सोसंन्यासीजानि ॥
रागद्वेषतेतोरहित, ताहिबन्ध्योतूमानि ॥ ३ ॥

हे महाबाहो, जो नकोई वस्तुसे द्वेषकरै, न चाहनाकरै सो सुख दुःखादि द्वंद्वरहित नित्यसंन्यासी जानना वह सुखपूर्वक निश्चयं बंधनसे मुक्त होता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ॥
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

दोहा–योगसांख्यकोद्वैकहत, मूरखपंडितनाहिं ॥
दोऊमेंएकैभजैं, दोऊफलहैताहि ॥ ४ ॥

जो मूर्ख हैं वे सांख्ययोगोंको याने ज्ञान कर्मोंको न्यारे कहते हैं पंडित नहीं कहते हैं. इन दोनोंमें से एकमेंभी अच्छी तरहसे स्थित रहाभया दोनोंके फलको पाता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सपश्यति ॥५॥

दोहा—स्थानजलहियेसांख्यते, सोइयोगतेहोय ॥
सांख्ययोगएकैगनै, ताकोज्ञानिजोय ॥ ५ ॥

जो स्थान ज्ञानकरिके प्राप्तहोताहै सोई कर्मकारिकेभी प्राप्तहोताहै इससे ज्ञानको और कर्मको जो एक जानताहै सोजानता है यानेविद्वान् है ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

दोहा—लहसंन्यासहिदुःखसो, विनकर्मनरेमीत ॥
योगयुक्तिजेकरतुहैं, लहतब्रह्मनिश्चित ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! यहसंन्यास कर्मविना प्राप्तहोनेको दुर्गमहै याने होनेहीका नहीं. जो कर्मयोग युक्त आत्मज्ञानमें मनलगाये है सो थोड़ेही कालमें ब्रह्मको प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

दोहा—इंद्रियजितकेशुद्धही, योगयुक्तिजोकोय ॥
जीवनजानैआतमा, कर्मलिप्तसुनहोय ॥ ७ ॥

जो कर्मयोग युक्त है याने निष्काम कर्म करताहै और वाणीजिसकी शुद्ध है याने वाणीसे हरिकीर्त्तन करता है और मन शुद्ध है याने मनसे हरिस्मरण करता है और जितेंद्रियहै याने इंद्रियविषयको श्रेष्ठ नहीं जानता है और सर्व भूतप्राणीका आत्मा अंतर्यामिमें है आत्मा मन जिसका सो पुरुष कर्म करता भयाभी नहीं लिप्त होता है ॥ ७ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित् ॥
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्छ्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ८ ॥ ९ ॥

दोहा–ज्ञानीकर्मनिकरतहूं, लेइकियेनाहिंमानि ॥
सूंघतदेखतछुवतपुनि, सुनतचलतहूंजानि ॥ ८ ॥
सोवतजागतचलतअरु, बोलतडरहूदेत ॥
इंद्रियविषयनमेंपगी, जानतुहैयहहेत ॥ ९ ॥

इंद्रियनके विषयोंमें इंद्रियां वर्त्तमान रहती हैं ऐसे धारण करे भये तत्व-ज्ञानी, कर्मभोगी देखतां, सुनतां, स्पर्शतां, सूंघंता, खातां, चलतां, सोतां, श्वासलेता, बोलता, छोड़ता, पकरतां, नेत्रखोलता, मीचता भयोभी मैं कुछ भी नहीं करताहौं ऐसे मानताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

दोहा–कर्मकरैतजिसंगको, सबको ब्रह्महिमानि ॥
ताकोपापनलगतुहै, पद्मपत्रजलजानि ॥ १० ॥

जो शरीरमें याने शरीरस्थ इंद्रियनमें कर्मोंको धारणकरके याने कर्म करने वाली इंद्रियां हैं ऐसे जानिके कर्म फलासक्तिको त्यागिके कर्म करता है सोपापकरके नहीं लिप्त होता है, जल करके कमल पत्र सरीखा ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

दोहा–देहबुद्धिमनइंद्रियनि, योगीह्वैनिस्संग ॥
कर्मकरतअतिचायसों, चित्तशुद्धकेढंग ॥ ११ ॥

जो योगी हैं वे फलसंग त्यागिके आत्मशुद्धिकेलिये याने आत्मगत प्राचीन कर्म बंधन छूटनेके वास्ते शरीरकरके, मनकरके, बुद्धिकरके, केवल इंद्रियोंकरकेभी कर्म करते हैं ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तः कामकारेण फलेसक्तो निबद्ध्यते ॥ १२ ॥

दोहा-ज्ञानीहूँमुक्तहिलहै, कर्मकरैफलछाँडि ॥
पुष्पफलनकीआशकरि, बाँधिकामनाआँडि ॥ १२ ॥

युक्त याने आत्मज्ञानयोगयुक्तपुरुष कर्मफलको त्यागि के ईश्वरनिष्ठ शांतिको प्राप्तहोताहै जो आत्मज्ञानयोगरहितहै सो यथेष्टकरणकरके फल-विषे आसक्तभया ऐसा जो जीव सो बंद्धहोय ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

दोहा-मनकरिकर्मनिजेतजत, ज्ञानीतिनकोमानि ॥
नवद्वारपुरमेंबसत, लेतसुखनकीखानि ॥ १३ ॥

वशी याने जिसकाचित्तवशहै ऐसादेहीदेहधारिजीवसो नवद्वारका पुरजो देह तिसमें मनसे कर्मोंको स्थापितकरके नैं करता नै कराताभयां सुखजैसे होय तैसे ही रहताहै ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

दोहा-ईश्वरनहिंकर्मनिकरत, नहिंकर्मनिकरतार ॥
कर्मफलनिहूँनहिंकरत, प्रकृतिकरतविस्तार ॥ १४ ॥

प्रभुयाने अविनाशी आत्मा लोकजोदेवादिकशरीरतिसैका नैं कर्त्तापन नं कर्म नैं कर्मफलकेसंयोगको सिरजताहै क्योंकि, यहस्वभावयानेअनादिका-लप्रकृतिसंसर्गकीवासना प्रवर्त्त है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥ १५ ॥

दोहा—सुकृतिनकाहूकोगहै, औरपापनहिंलेय ॥
ढँप्योज्ञानअज्ञानतै, मोहुँनप्रगटनदेय ॥ १५ ॥

जैसेकि, कर्तृत्वऔरकर्मोंकोनहींउत्पन्नकरताहैइसीसेयहजीवात्मा किसी-शरीरसंबंधी पापकोभी नहींग्रहणकरता है औरसुकृतकोभी नहीं ग्रहणकरता है क्योंकि जिनकाज्ञान अज्ञानकरके ढकरहाहै उस करके वेजीव मोहकोप्राप्तहोते हैं याने अज्ञानकरके देहादिकमें आसक्ति और उससे दुःख होताहै ॥ १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

दोहा—दूरिकियेअज्ञानजिनि, हियेज्ञानप्रकटाय ॥
देखतईशस्वरूपते, ज्ञानसूरकेदाय ॥ १६ ॥

जिनका आत्मसंबंधी ज्ञानकरके वह अज्ञान नष्टभयाहै उनका वह श्रेष्ठ ज्ञान सूर्यसदृश प्रकाशकरताहै याने वे संसारदुःखरहितमुक्तहैं ॥ १६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

दोहा—जेमनकोअरुबुद्धिको, राखतईश्वरमाँह ॥
जन्ममरणतिनकोनहीं, मुक्तिहोतनरनाँह ॥ १७ ॥

उसआत्मज्ञानहीमेंहैबुद्धिजिनकी उसीमेंहै मनजिनका उसीमेंहैनिष्ठाजि-नकी और वहीहै श्रेष्ठस्थानजिनका इसतरहसेज्ञानकरकेनष्टभयेहैंमनकेविका-रजिनके वेपुरुष मुक्तिको पावते हैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

दोहा-विद्याविनयलियेजुद्विज, गोगजश्वपचौश्वान ॥
ज्ञानीइनकोसमगनत, भेदलेतनहिंमान ॥ १८ ॥

विद्या और विनय युक्त ब्राह्मणमें, गऊमें हाथीमें और कुत्तेमें और चांडालमें भी पंडितजन समदर्शी होते हैं याने आत्माको आप सदृश जानते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९

दोहा-समताजिनकेहीयमें, तिनजीत्योसंसार ॥
समताब्रह्मकोकहत, ब्रह्मलीननिरधार ॥ १९ ॥

जिनका मन ऐसी समतामें स्थित है उन्होंने इहां ही संसार जीता है. जिस वास्ते कि, ब्रह्म निर्दोष सर्वत्र समानहै तिसीसे वे ब्रह्मप्राप्ति निमित्त स्थितहैं ॥ १९ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

दोहा-सुखपायेहरषैनहीं, दुखपायेनरिसाय ॥
राखैथिरनिजबुद्धिको, ब्रह्महिरहैसमाय ॥ २० ॥

प्रिय वस्तुको पायके हर्षनी नहीं और अप्रियको पायके व्याकुल न होनी, ऐसा स्थिरबुद्धि, विचारशील ब्रह्मकाज्ञाता ब्रह्म प्राप्ति निमित्त स्थितहै ॥ २० ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ॥
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

दोहा-बाहरकेसुखकोतजै, हियसुखरहैजुजानि ॥
ब्रह्मविषैचितकोधरत, लेहिजुआनँदमानि ॥ २१ ॥

जो शब्दादिक विषयोंमें अनासक्त भया हुआ जो आत्मोमें सुखको पावताहै सो ब्रह्म प्राप्ति उपाय चित्तवाला पुरुष अक्षय सुखको पावता है याने मोक्षपाताहै ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ॥
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

दोहा-विषयतजैसंसारके, ते हैंदुखकोमूल ॥
उपजतविनशतहैंतिन्हैं, पंडितगहैनभूल ॥ २२ ॥

हे कुंतीपुत्र ! जे शब्दस्पर्शादिक भोगहैं वे दुःखके कारण आद्यंतवंत याने होते जाते रहते हैं अर्थात् अल्पसुख हैं इस निश्चयसे उनमें पंडितजन नहीं रमते हैं ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

दोहा-कामक्रोधकेवेगको, जोसहिसकैस्वभाय ॥
तेयोगीनितहींरहैं, थिरसुखमेंलपटाय ॥ २३ ॥

जो मनुष्य कामक्रोधके वेगको शरीरसे निकसनेके प्रथमें उसवेगको सहनेको सकताहै सो योगी है सो मनुष्य इसी लोकमें सुखी है॥ २३॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ॥
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

दोहा-जाकेहियपरकाशहै, अंतरसुखआराम ॥
यहयोगीपरब्रह्महै, लहैब्रह्मकोधाम ॥ २४ ॥

जो आत्माहीमें सुखी और आत्माहीमें है विश्राम जिनको तैसे ही जो अंतर्ज्योति याने आत्मज्ञान ही करके प्रकाशितहै सोई योगी ब्रह्मप्राप्ति उपाय तत्पर ब्रह्मवत् मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

लभंते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

दोहा—जोज्ञानीपापनितजत, होतब्रह्ममेंलीन ॥
भेदनतिनकेजीयमें, रहतसबनिसोदीन ॥ २५ ॥

जिनके लाभअलाभ सुख दुःखादिक दो दो उपद्रव नष्ट भये हैं जिनका मन ईश्वरमें लगाहै और सर्वभूत प्राणिमात्रके हितमें रहतेहैं इससे उनके पापक्षीण भयेहैं ऐसे ऋषीजन ब्रह्मसमान मुक्तिको पाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

दोहा—कामक्रोधतेजेरहित, वशकीनोनिजचित्त ॥
ज्ञानवंतजेहैंसदा, ब्रह्मचहूँदिशिमित्त ॥ २६ ॥

जो कामक्रोधरहित हैं और ईश्वरप्राप्तिके यत्न करने वाले हैं और चित्त जिनके वशहैं ऐसे आत्म ज्ञानिनको सर्वप्रकारसे ब्रह्मसुख वर्त्तमान हो रहाहै ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

दोहा—तजैविषयसंसारमें, दृष्टिभौंहमधिराखि ॥
प्राणअपानहिसमकरै, नासामधिअभिलाषि ॥ २७ ॥

जीतेइंद्रियबुद्धिमन, मुक्तिहिमेंमनदेय ॥
इच्छा भयक्रोधहितजै, मुक्तिपदारथलेय ॥ २८ ॥

बाह्य इंद्रियोंके स्पर्श जो शब्दादिके विषय तिनको बाहेर याने त्याग करके फिर भौंहोंके मध्यमें दृष्टिको करके नासिकाके भीतरही संचारकरै ऐसे प्राणापानोंको सम करके जो मुनि याने मननशील पुरुष इंद्रिय मन और बुद्धिको वशकरै मोक्षहीमें आसक्त इच्छा, भय और क्रोध करके रहित होइ सो सदामुक्तही है ॥ २७ ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो-नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-तपयज्ञनको भोगता, सबलोकनिकेईश ॥
शांतिलहैयोंजानिकै, मोकोप्रभुजगदीश ॥ २९ ॥

अब औरभी अति सुगम मुक्तिका उपाय कहते हैं. सर्वयज्ञ और तपोंका भोक्ता सर्वलोकोंका महेश्वर याने लोकेश्वरोंकाभी ईश्वर सर्वभूतप्राणियोंका सुहृद् ऐसा मेरेको जानिकेभी मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यां पंचमाध्यायप्रवाहः ॥ ५ ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

दोहा-कर्मफलनिचाहैनहीं, करैकर्मनिहकाम ॥
योगीसंन्यासीवही, पावतुहैसुखधाम ॥ १ ॥

कर्मयोग कहिके अब ज्ञानकर्म साध्य आत्मदर्शनरूप योगाभ्यास कहते हैं. तहां कर्म योगकी अपेक्षा रहित योगसाधनत्व दृढ करनेको ज्ञानाकार कर्मयोगको योग शिरोमणि कहते हैं सो ऐसे कि, जो कर्मफलको न चाहताभया स्ववर्णाश्रमोचित करने योग्य कर्मको करता है सो संन्यासी है और योगी है. जिसने अग्निकर्मको त्यागा है सो संन्यासी और योगी नहींहै और जिसने क्रियाकर्मको त्यागाहै सोभी संन्यासी योगी नहीं है ॥ १ ॥

" यहां एक श्रीकृष्णकाअभिप्राय औरभी दीखताहै कि, कलियुगमें संन्यासका निर्वाह होगानहीं. क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि चंचल होगी. सो देखनेमेंभी आता है कि, जो घर छोडते हैं तौ संन्यासी हैके मठ बांधिके व्यापार करते हैं. जो स्त्रीविवाहित नहीं तौ परस्त्रीगमन करते हैं. पुत्रोंकी जगह शिष्य करते हैं; ऐसेही औरभी सामान्यगृहस्थोंसे अधिक रखके केवलं प्रपंचरत होते हैं इससे श्रीकृष्णने निष्कामकर्म कर्ताहीको संन्यासी योगी कहा है और अग्निकर्म तथा क्रियात्यागनेका निषेध किया है" ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ॥
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

दोहा—जाकोसंन्यासीकहै, वहयोगीतूजानि ॥
बिनुसंन्यासहिंयोगनहिं, यहैसाँचतूमानि ॥ २ ॥

अब कहेभये कर्मयोगमें ज्ञानभी दिखातेहैं. हेपांडुपुत्र ! जिसको संन्यास कहतेहैं उसको अभेदकरके योग जानो जिसवास्ते कि, कर्मफल संकल्पत्यागेविना कोईभी योगी नहीं होताहै. अर्थात् कर्मफलको ईश्वरार्पण कियेविना योगी संन्यासी होता नहीं. जो कर्मफलको ईश्वरार्पण करताहै वही योगी और संन्यासीहै ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥
दोहा–योगहिकर्मनितेलहत, ज्ञानीचित्तविचारि ॥
योगलहैसांतहिगहै, विषयइंद्रियनिमारि ॥ ३ ॥
आत्मज्ञानकी प्राप्ति चाहनेवाले मननशीलको ज्ञानप्राप्तिकारणं कर्म कहाहै उसी ज्ञानप्राप्तभयेको मुक्तिकारण संकल्पविकल्पत्यागपूर्वकं कर्मही केहाहै ॥ ३ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासीयोगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥
दोहा–विषयनिसोंअरुकर्मसों, होइप्रीतिजबदूरि ॥
सबसंकल्पनिकोतजै, योगरहैभरपूरि ॥ ४ ॥
जबे न इंद्रियोंके विषयनमें न कर्मोमें आसक्तहोय तब सर्वसंकल्पोंका त्यागी योगारूढ केहाताहै इससे कर्मकरना अवश्य है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥
दोहा–निजआत्माकोउद्धरत, अधोगमननहिंदेय ॥
आतमहीरिपुआपको, आतमहीसुखदेय ॥ ५ ॥
ऐसे आपके वश मनकरके आपका उद्धार करना, आपका अवसाद याने घात याने अधोगति नकरना. कारण कि, आपका मनही आपका मित्रहै और वह मनही आपका शत्रुहै ॥ ५ ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥
दोहा–आपुहिजीते आपुको, सोईबंधुजुयाहि ॥
जिनजीत्योहैआतमा, अरिह्वैवर्त्ततताहि ॥ ६ ॥

जिसने बुद्धिकरके निश्चय मनं जीताहै उसं जीवात्मांका मनं मित्रहै औरं जिसने मन नहीं जीताहै उसका मन शत्रुत्वमें शत्रुसरीखों होताहै ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

दोहा-जिनजीत्योहैआतमा, शांतिलहैबहुज्ञान ॥
शीतउष्णसुखदुखजुसम, अपमानाजूमान ॥ ७ ॥

शीत उष्ण सुख और दुःखमें तैसे ही मान अपमानोंमें जीता है मन जिसने ऐसे शांतकी बुद्धि अतिशय परिपूर्ण रहती है ॥ ७ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ॥
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

दोहा-जानतज्ञानविज्ञानको, अरुइंद्रियजितहोय ॥
सोनोपाहनएकसम, गनैजुयोगीकोय ॥ ८ ॥

ज्ञान जो आत्मज्ञान विज्ञान जो विशेषज्ञान याने अनात्म आत्मविवेक इन करके जिसका मन तृप्त होय कूटस्थ याने सर्व शरीरोंमें आत्माको समान जानिके निर्विकार इसीसे जितेंद्रियत्वसे जो ठीकरी पत्थर और सोना इनको सम जान रहा है ऐसा योगी युक्त याने आत्मदर्शनयोगयुक्त कहाताहै ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

दोहा-मित्रउदासीशत्रुपुान, अरुनिजबंधुसमान ॥
साधोपापीचित्तमें, गनैयेकछुउनमान ॥ ९ ॥

सुहृद् जो प्रत्युपकारविना हितकारक मित्र परस्पर उपकारी अरि शत्रु उदासीन जो प्रीति वैर रहित मध्यस्थ जो सर्वकाल प्रीति वैर समान द्वेष्य जो सदा ईर्षा करता होय सो जो सदाहितेच्छु सो बंधु जो धर्म शील सो साधु और जो पापशील सो पापी इन सबोंमें भी जो समबुद्धि होयँ सो श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

दोहा–बैठिइकैसेइकचितै, योगीसाधैयोग ॥
एकाकीचाहनकछू, जोरैंनहिंसुखभोग ॥ १० ॥

एकेही बैठा स्ववश चित्तमनवाला सांसारिक आशारहित आत्मा विना परिग्रहरहित ऐसा योगी एकांतमें बैठाभया मनको निरंतर परमात्मामें लगातारहै ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

दोहा–ठौरपुनीतनिहारिकै, करिआसनविस्तार ॥
नहिंऊँचौनीचौनहीं, पटकुशअजनविथार ॥ ११ ॥
करिबैठैमनकोजुथिर, सबइंद्रियनकोजीति ॥
करिकैआतमशुद्धको, योगकरैइहरीति ॥ १२ ॥

अब योगाभ्यासमें आसन नियम कहतेहैं. जैसे कि, पवित्रस्थानमें न अति ऊंचा न अतिनीचा कुशासनपर मृगचर्मादिक उसे पर वस्त्र ऐसा

और थिर आपका आसन बिछाइके उसे आसनपर बैठिके मनको एकाग्रकरके चित्त और इंद्रियोंके कर्म स्ववशकिये भया अपना बंधन छुटनेके वास्ते योगको करै ॥ ११ ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

दोहा—कायाशिरअरुग्रीवको, राखैएकसमान ॥
डीठिधरै निजनासिका, पेखैनहिंदिशिआन ॥ १३ ॥
शांतिगहैभवकोतजै, ब्रह्मचर्य्यव्रतलेय ॥
मोमेंराखैरोकिमन, लहैयोगकोभेय ॥ १४ ॥

अब बैठनेका नेम कहतेहैं--काया जो मध्यशरीर शिर और ग्रीवा इनको अचल थिर और सम राखेभये आपके नासिकाग्रको देखिके और और ओर नदेखताभया प्रशांतचित्त भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित मेरेमें चित्तलगाये भये मनको नियमितकरके आत्मनिष्ठ पुरुष मेरेमें लीनभयाहुआ बैठारहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

दोहा—यहिविधिकरैजुयोगको, निजमनकोथिरराखि ॥
शांतिलहैमोकोमिलै, रहैअमीरसचाखि ॥ १५ ॥

ऐसे नियममें मनहै जिसका ऐसा योगी ऐसेही सर्वकालमें मनको मेरेमें लगाताभया आनंदहै परमजिसमें ऐसी मेरेसदृश शांतिको पावताहै ॥ १५ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ॥
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

दोहा–योगलहैनहिंबहुसखे, विनभाषेतूमित्त ॥
सोवतहूंसोवैनहीं, अतिजागतहूंमित्त ॥ १६ ॥

अब योगीके आहारादिकोंका नियम कहते हैं–जैसे कि, हे अर्जुन ! जो अतिभोजन करता है उसका योग नहीं सिद्धहोता है और जो कुछभी भोजन नकरै उसकाभी योग नहीं सिद्धहोताहै और अतिसोनेवालेका योग नहीं सिद्धहोताहै, अतिजागनेवालेका भी योग नहीं सिद्धहोताहै ॥ १६ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

दोहा–युक्तअहारविहारजो, कर्मयुक्तपुनिहोय ॥
जागतसोवतजोजुगत, सोडारतदुखधोय ॥ १७ ॥

जो आहार और स्त्रीप्रसंगप्रमाणमें करैगा "आहारका प्रमाण यह कि, आधापेट अन्नसे और चौथाई जलसे भरके चौथाई पवनसंचारके वास्ते खाली राखै, स्त्रीप्रसंगप्रमाण यह कि, अतिकामकी इच्छा होनेसे स्त्रीसंग करै, जो कोई यहां शंका करै कि, योगीको तो ब्रह्मचर्य कहि आये हैं; जैसे कि, इसी अध्यायके चौदहवें श्लोकमें कहाहै सो सत्य है; परंतु "ऋतौ भार्यामुपेयात्" इस श्रुतिप्रमाणसे ऋतुसमयमें स्त्रीप्रसंग करनेमेंभी एक ब्रह्मचर्य है, औरभी कहाहै कि, "इंद्रियाणींद्रियार्थेषुवर्त्तंत इति धारयन् ॥ कर्मेंद्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन" इत्यादि तथा कहेंगे कि, "अथवा योगिनामेवकुले भवति धीमताम्" तौ जो योगी स्त्री प्रसंग न करैगा तो उसके कुलमें जन्म कैसे होगा ? इत्यादि प्रमाणोंसे योगी स्त्रीप्रसंग प्रमाणसे करै यह विहारशब्दका अर्थ सिद्धहै ऐसेही––कर्ममेंभी चेष्टा प्रमाणहीसे करै अति परिश्रम नकरैना यहाँ भागवतका प्रमाणदेते हैं "सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेततत्रपरिश्रमंतत्रसमीक्षमाणः" ऐसा द्वितीयस्कंधके दूसरे अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहाहै

ऐसेही जो प्रमाणसे सोवै और प्रमाणहीसे जागै उसँका दुःखनांशक योग सिद्ध होताँहै ॥ १७ ॥

यदा वि नियतं चित्तंमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

दोहा–जोनिजचितकोरोकिकै, राखैआतममाहिं ॥
तजैसबैजोकामना, सोयोगीनरनाहिं ॥ १८ ॥

जब आत्माहीमें अतिनिश्चल चित्त लगरहताहै तब सर्वकामनाओंसे निःस्पृहहुआभया वह पुरुष युक्त ऐसा कहाताहै ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

दोहा–जैसेदीपसमीरबिनु, रहैज्योतिठहराय ॥
योगीनिश्चलचित्तको, उपमाहैयहभाय ॥ १९ ॥

जैसे निवातस्थानमें धराभया दीपक नहीं हालता तथा डोलता है तैसेही वशहै चित्त जिसका ऐसे योगके करनेवाले योगीके मनकी जो उपमा सोई कही है ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥
यत्र चै वात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

दोहा–योगीसेवतयोगको, चित्तजहाँठहराय ॥
निरखतआतमकोतहाँ, रहतसदासुखपाय ॥ २० ॥

योगसेवन करके विषयोंसे रोकाभया चित्त जहां विश्रामको प्राप्त होता है और जहां बुद्धिकरके आत्मस्वरूपको निश्चय करता भया मन हीमें संतुष्ट होय ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥ २१ ॥

दोहा-जोसुखइंद्रिनतेपरे, बहुतबुद्धिगहिलेत ॥
वासुखकोजानैतवै, तापाछेइहनेत ॥ २१ ॥

जो इंद्रियोंके जाननेमें न आवै बुद्धिकरके ग्रहणकरनेमें आवै ऐसा अत्यंत सुख उसको जिसयोगमें स्थितभया हुआ यह पुरुष जने है ऐसा निश्चय और फिर आत्मस्वरूपसे न चलायमान होय ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

दोहा--जोपायेलाभनअधिक, औरजानिरेमित्त ॥
स्थिरतागहिडोलैनहीं, बहुदुखपायेचित्त ॥ २२ ॥

जिसको पायके फिर उससे अधिक श्रेष्ठ लाभ नहीं मानताहै जिसमें वर्त्त भारीभी दुःखकरके नहीं घबराता है ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
सनिश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

दोहा--दुखहूकेसंयोगको, मानजुलेतवियोग ॥
निश्चयकरियोगहिकहैं, ताकोकहतजुयोग ॥ २३ ॥

उसको दुःखसंयोग वियोगकारक योगनामक जानना सो योग निर्विकल्प चित्तसे निश्चयकरके करनेही योग्यहै ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥२५॥

दोहा-संकलपनिजोकामना, तिन्हैंतजोचितचाय ॥
मनसोंरोकेइंद्रियनि, योगकरैयाभाय ॥ २४ ॥
धीरजधरिअरुबुद्धिकरि, हरैहरैसबत्यागि ॥
कछुवैकरैनकामना, आतमसोअनुरागि ॥ २५ ॥

स्पर्शजन्य और संकल्पज ऐसे भेदसे कामना दो प्रकारकी है, तिनमें स्पर्शज शीतउष्णादिक, संकल्पज पुत्रवित्तादिक इनमें स्पर्शजका त्याग स्वरूपसे नहीं हो सकता इससे संकल्पज सर्व कामनाओंको समग्रतासे मनहीसे त्यागिके सर्व इंद्रियोंको सर्वत्रसे नियमित करके विवेकशुद्ध बुद्धि करके धीरे धीरे विश्रामको प्राप्त होना फिर मनको आत्मस्वरूपमें स्थिर करके आत्मस्वरूपविना किसीकोभी न चिंतवनकरना ॥ २४ ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

दोहा-मनचंचलजिततितचलै, ताकोराखैरोकि ॥
करिसंयमनिजआतमा, सजैजुताकोठोकि ॥ २६ ॥

यह मन चंचलहै इसीसे आत्मस्वरूपमें थिर नहीं रहताहै. सो यह मन जहां जहां लगै तहांतहांसे इसको फिरायके आत्मस्वरूपंहीमें लगाना ॥ २६ ॥

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

दोहा-जाकेमनमेंशांतिहै, पापरहितजोहोय ॥
मगनजुब्रह्मानंदमें, तायोगीकोहोय ॥ २७ ॥

कारणं कि, जिसका मन आत्मस्वरूपमें स्थिर है उसीसे उसका रजोगुणभी नष्टभयाहै,उससे वह निष्पाप है, उससे वह आपके स्वरूपमें स्थिरहै ऐसे इस योगीको उत्तमं याने आत्मानुभवरूप सुखं प्राप्तं होताहै ॥ २७ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

दोहा–जोयोगीइहविधिकरै, योगपापकोत्यागि ॥
सहजाहिब्रह्महिकेसुखहिं, लहेरहतअनुरागि ॥ २८ ॥

ऐसे निष्पाप योगी इसीतरहै सर्वदा मनको स्वरूपज्ञानमें युक्त करता–करतां ब्रह्मानुभवरूपं अत्यंतसुखको सुखंसे पावंताहै ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

दोहा--मोहिंलखैसबठौरजो, सबकोमोहीमाहिं ॥
मोकोदेखतसोसदा, हौंहूँदेखतताहिं ॥ २९ ॥

सर्वत्र शत्रुमित्रादिकोंमें समदृष्टि योग जो " द्वासुपर्णासयुजासखाया " इस श्रुतिप्रमाणसे सखित्वरूप संयोग उसमें लगायाहै मन जिसने सो आपरूपंको आकाशादि सर्वभूतोंमें स्थितं और उनका आकाशादि सर्वभूतोंको आपंमें देखताहै ॥ २९ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

दोहा–व्यापकहौंसबजीवमें, मोकोसेवैकोय ॥
कैसेहूँकितहूँरहौं, ताकोमोमेंजोय ॥ ३० ॥

ऐसे जो मेरेको सर्वत्र मालाके मणिकोंमें सूत्रकीतरह देखतां है और

सर्वजगत् सूत्रमें मणिकोंकीतरह मेरेमें देखताहै मैं उसके अदृश्य नहीं होताहूँ और वह मेरे नहीं अदृश्य है ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥

दोहा—सर्वविषेअस्थितजुहों, इकलखिभजैजुमोहिं ॥
रहौंकौनहूँभाँतिवह, मोमेंवर्त्ततुजोहिं ॥ ३१ ॥

जो एकत्वे याने सर्वसे मित्रभाव, (एकत्वका अर्थ जो स्वरूपकी एकताकरै तौ भजन किसका करै ? इससे मित्रताही अर्थहै. वाल्मीकीयसुंदरकांडमें भी "रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत" इस हनुमानके वाक्य करके एकताका अर्थ मित्रताही सिद्ध होताहै इससे) जो सर्वकी मित्रतामें रहाभया सर्वभूतोंमें व्यापक मेरेको भजताहै निश्चय सो योगी सर्व आचरण करताभयां मेरेमें वर्त्तमान है याने मेरे हृदयमें वसता रहताहै ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

दोहा—सबकोदेखतआपसम, दुखसुखएकैभाय ॥
सोयोगीसबतेबड़ो, मोमेंरहैसमाय ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! जो सुखं अथवा दुःखको आपके समत्व करके सर्वत्र समान देखता है सो योगी उत्तमहै. यह श्लोक उनतिसवें श्लोकका खुलासा करने वालाहै ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ॥
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ३३

दोहा—योगकह्योतुमकृष्णजू, मोकोएकसमान ॥
रहैनमोचितचंचलहि, जोतुमकियोबखान ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुन बोलते भये कि, हे मधुसूदन ! जो यह योग समताकरके तुमने कहा सो मनके चंचलत्वसे मैं इसकी स्थिर स्थिति नहीं देखताहों ॥ ३३ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

दोहा—मनहैचंचलकृष्णजू, बहुक्षोभकदृढजानि ॥
ताकोरोकनपवनसम, है अतिकठिनअनुमानि ॥ ३४ ॥

हे कृष्ण ! जिससे कि यह मन चंचल इंद्रियोंका क्षोभक दृढ बली है मैं इसको रोकना पवनका रोकना जैसा दुष्कर मानताहों ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

दोहा—अर्जुनतुमसाँचीकही, मनचंचलनमहाय ॥
योगकियेवैरागसों, नीकेपकरोजाय ॥ ३५ ॥

ऐसासुन श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे महाबाहो ! यह मन चंचल है इसीसे रोकनेमें आना कठिनहै. यहां संशय नहीं तो भी हे कुंतीपुत्र ! अभ्यास करके और वैराग्य करके रोकनेमें आताहै ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

दोहा–जिनपकरचोनहिंचित्तनिज्ञ, तापैयोगनहोय ॥
जिनअपनोमनवशकियो, लहतजगतसोसोय ॥ ३६ ॥

यह योग जिसने मन वश न किया उसंकरके प्राप्त होनेका नहीं ऐसी मेरी मति है और जिनने मनको वश किया है उसंकरके यत्न करते करते उपायसे प्राप्ति होनेको संकताहै ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ॥
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥

दोहा–अयतीअरुश्रद्धासहित, योगभ्रष्टतापाय ॥
लहैनसिद्धसुयोगकी, कौनगतिहिकोजाय ॥ ३७ ॥

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते" इत्यादि वाक्यों करके योगमाहात्म्य सुनाथा तौभी विशेषज्ञानके वास्ते फिर पूंछतेहैं-जैसे कि, हे कृष्ण! जो श्रद्धाकरके युक्त और यत्न न करसको इससे योगसे मन चलायमान भया इससे योग सिद्धिको नपायके किस गतिको जाता है॥ ३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

दोहा–किधौंदुहुनितेभ्रष्टह्वै, बादललौंविनशाय ॥
ताकोकछूनआसरो, रह्योमूढ़केभाय ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो! वेदके मार्गमें भूलाभया याने स्वर्गादि प्राप्तिनिमित्त कर्म त्यागके निष्कामकर्मरूप योगको भी न प्राप्तभया इसीसे वह अप्रतिष्ठित और उभयभ्रष्ट याने स्वर्गादिप्राप्तिकारक कर्मभी छोड़ा और योगभी न मिला इसीसे कदाचित् छिन्नाभ्रकी तरह जैसे बड़े मेघमेंसे निकसिके मेघका टुकड़ा दूसरे मेघको न प्राप्तहोके बीचहीमें नष्ट होताहै तैसे न नष्टहोइं॥ ३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता नह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

दोहा--मेरेयासंदेहको, करोदूरिजगदीस ॥
मेटोयासंदेहको, कौनकरैतुवरीस ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! इस मेरे संशयको अच्छी तरहसे छेदन करनेको योग्यहो क्योंकि, इस संशयका छेदनेवाला तुमबिन दूसरा नहीं मिलेगा ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

दोहा--अर्जुनदोऊलोकमें, ताकोहोयननास ॥
भलेकर्मजोकरतहै, तिनकोअघनहिंवास ॥ ४० ॥

अर्जुनके वाक्य सुनिके कृष्ण बोले कि, हे पार्थ ! उस योगीका नाश न इसलोकमें ही न परलोकमें होता है; क्योंकि, हे तात ! शुभकर्त्ता कोई भी दुर्गतिको नहीं पावता है ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

दोहा--पुण्यवंतकेलोकलहि, रहितबहुतदिनजाय ॥
योगभ्रष्टधनवंतशुचि, तिनघरजनमैंआय ॥ ४१ ॥

जो योग पूराभयेविना मरजाय तो भी वह योगभ्रष्ट पुण्यकरने वालोंके लोकोंको प्राप्तहोके वहां अनेकवर्ष रहिके पवित्र और धनवालोंके घरमें जन्मता है ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

दोहा–बुद्धिवंतयोगीकुलनि, आयलेयअवतार ॥
जन्मलहतऐसेवरनि, होतनवारंवार ॥ ४२ ॥

अथवा बुद्धिमान् योगिनके कुलमें ही जन्मता है, जो ऐसा यह जन्म सो इस लोकमें निश्चय दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

दोहा–तिनहूंपहिलीदेहको, लहतबुद्धिसंयोग ॥
यतनकरतहैसिद्धिको, बहुविधिसाधैयोग ॥ ४३ ॥

हे कुरुनंदन ! वहां जन्मलेके वेही पूर्वदेहसंबंधी बुद्धिसंयोगको पावता है और उसपीछे फिरभी उस सिद्धिनिमित्त यत्नकरता है ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

दोहा–सोतौअपनेवशनहीं, सोपाहिलोअभ्यास ॥
तातेउपजैयोगको, ब्रह्मशब्दमें वास ॥ ४४ ॥

जो न करना चाहै इंद्रियजित न होय तो भी वह पुरुष उसी पूर्वाभ्यासकरके उसीको प्राप्त होता है. क्योंकि, जो योगके जाननेकी भी इच्छा करे तौभी शब्दब्रह्म याने देवादिनाम शब्दयुक्त जो प्रकृति उसको उल्लंघन करजाताहै याने मुक्त होता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

दोहा-योगीजोजतननिकरै, डारैअघनितधोय॥
बहुतजन्मसिद्धहिलहै, ताहिपरमगतिहोय॥ ४५॥

ऐसे प्रयत्नसे योग करता करता निष्पाप भयाहुआ योगी अनेक जन्मों-करके सिद्धभया तब निश्चय मुक्तिको प्राप्त होताहै॥ ४५॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥४६॥

दोहा-तपसिउतेयोगीअधिक, ज्ञानीहूतेजानि॥
कर्मनिहूंतेहैअधिक, अर्जुनयोगहिमानि॥ ४६॥

हे अर्जुन! योगी जो निष्काम कर्म कर्त्ता सो सकामिक तपस्विनसे अधिक मानाहै, ज्ञानिनसे भी अधिक है और सकाम कर्म करनेवालोंसेभी योगी अधिक है; तिससे तुम योगी हो याने निष्काम होके स्वधर्मरूप क्षत्रियकर्म युद्ध करो॥ ४६॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना॥
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अभ्यास-योगो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

दोहा-जोयोगीराखैमनहिं, मोमेंनिश्चलभाय॥
श्रद्धायुतमोकोंभजै, सोसवतेअधिकाय॥ ४७॥
कर्मज्ञानव्रतयोगते, भक्तिसवनिशिरमौर॥
तिनअर्जुनहोवशिकियो, मोबिनाछिननहिंऔर॥ ४८॥

हरिवल्लभभाषारच्यो, मनहूँराखतठौर ॥
छठयेंअध्यायाहिकह्यो, यहीयोगनिजमौर ॥ ४९ ॥

जो श्रद्धावान् पुरुष मेरेमें लगारहै जो चित्त ऐसे चित्त करके मेरेको भजताहै सो" सर्व योगिनमेंभी श्रेष्ठ योगी है" ऐसा मेरा अभिप्राय है॥ ४७॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां षष्ठाध्यायप्रवाहः ॥ ६ ॥

इति प्रथमं षट्कं समाप्तम् ॥

अथ द्वितीयषट्कं प्रारभ्यते ।

प्रथम षट्कमें याने प्रथमके छः अध्यायनमें ईश्वरप्राप्तिका उपायरूप भक्तियोगका अंग आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोग कर्मयोगसे कही. अब मध्यषट्कमें याने छःसे वारहपर्यंत छः अध्यायनमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ ज्ञान और उस ज्ञानके माहात्म्यपूर्वक भगवतकी उपासना याने भक्ति इसीको प्रतिपादन करत हैं. इसका खुलासा अठारहवें अध्यायमें पैंतालीस श्लोकपीछे " यतः प्रवृत्तिः " इहाँसे लेके " मद्भक्तिं लभते पराम् " इस चौअनवें श्लोकपर्यंत कहेंगे, अब सातवें अध्यायमें भगवान् आपका स्वरूपवैभववर्णन करेंगे ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ॥
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

दोहा—मेरोई करिआसरो, मोहींमेंचितराखि ॥
मोकोजानेसत्यवह, योंसमझावतभाखि ॥ १ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! तुम मेरेमें चित्तलगाये भये मेरे आश्रित-

भयेहुये योगमें युक्त भये हुये जैसे संशयरहित समग्र याने विभूतिबलसहित मेरेको जानोगे सो सुनो ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

दोहा—ज्ञानौअरुविज्ञानहौं, तोसोंकहौंबखानि ॥
जाकेजानेजानिबो, कछुनरहतहैजानि ॥ २ ॥

मैं तुम्हारेको इस विज्ञानसहित ज्ञानको संपूर्णकरके कहता हौं जिसको जानके फिर इसलोकमें और जानने योग्य नहीं रहताहै ॥ २ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

दोहा—जतनकरतहैसिद्धिको, एकहजारनिमाहिं ॥
तिनहूमेंकोऊलहै, बहुतलखतमोनाहिं ॥ ३ ॥

मनुष्योंके हजारोंमें याने अनेक हजार मनुष्योंमें आत्मज्ञानसिद्धिके वास्ते कोई एक यत्नकरताहै यत्नकरनेवाले सिद्धोंमें भी कोई एक मेरेको निश्चयकरके जानताहै अर्थात् ऐसा जाननेवालाही दुर्लभ है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

दोहा—भूमिनीरपावकपवन, अंबरमनबुधिमानि ॥
अहंकारहैआठवों, मायाभेदनिहानि ॥ ४ ॥
मायामेरीएकयह, जिनजगह्योसंसार ॥
सांचीमनमेंमानिहै, जीवरूपनिरधार ॥ ५ ॥

हेमहाबाहो ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे आठ प्रकारकरसे न्यारीन्यारीभई यह जो मेरी प्रकृति सो यह अपरा याने जड है और इससे और जीवरूपको मेरी परा याने चेतन प्रकृति जानो जिस प्रकृतिकरके यह जगत् धारण भयाहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

दोहा—मायातेउत्पत्तिहे, सबैजीवइहिदाइ ॥
हौंउपजाऊंजगतसब, नाशकरोंचितचाइ ॥ ६ ॥

सर्वभूत प्राणिमात्र इन्हीं दोनोंसे प्रगट होतेहैं ऐसो जानो. मैं सर्व जगत्का उत्पत्तिस्थान तथा प्रलयस्थान भीहौं ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं किंचिन्नान्यदस्ति धनंजय ॥
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

दोहा—अर्जुनमोतेजोपरे, औरबातजिनिजानि ॥
ज्योंमणिपोहेसूतमें, त्योंसबमोमेंमानि ॥ ७ ॥

सूत्रमें मालाके मणियोंकी तरह मेरेमें यह सर्वजगत् पोहां है इसीसे हे धनंजय मेरेसें न्यारा और कुछभी नहीं है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ॥
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

दोहा—चंद्रसूरकोकिरनहौं, जलरसमोकोंमानि ॥
वेदनमेंहौंहींप्रणव, पौरुषशब्दबखानि ॥ ८ ॥

" सूत्रे मणिगणा इव " इसीको दिखातेहैं. हे कुंतीपुत्र ! जलमें रस चंद्र-सूर्यकी कांति सर्ववेदोंमें ॐकार. आकाशमें शब्द पुरुषोंमें पुरुषार्थ मैं हौं याने इन जलादिकोंके सार जो रसादिक उनकाभी शरीरी मैं और

वे मेरे शरीर हैं ऐसे अहं शब्दका अर्थ सर्वत्र शरीर शरीरी संबंधसे जानना ॥ ८ ॥

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

दोहा–गंधजुहौंहींभूमिमें, हौंपावकमेंतेजु ॥
जीवनहूँकोजीवहूँ, तपसिनितपलखिलेजु ॥ ९ ॥

पृथिवीमें पवित्र गंध और अग्निमें तेज मैंही हौं सर्व भूतेप्राणिनमें आयुष्य और तपस्विनमें तप मैं हौं ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

दोहा–सबजीवनकोबीजहौं, मोकोजानिजुलेहु ॥
बुद्धिवंतमेंबुद्धिहौं, सबतेजनिकोगेहु ॥ १० ॥

हे पार्थ ! सर्वभूतोंका सनातन उत्पत्तिकारण मेरेको जानों मैं बुद्धिमानोंमें बुद्धि तेजस्विनमें तेज हौं ॥ १० ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

दोहा–बलबलवंतनिकोजुहौं, कामरागजितनाहिं ॥
कामरूपहौंहींजुहौं, धर्मबसैमोमाहिं ॥ ११ ॥

हे भरतर्षभ ! मैं जो वस्तु प्राप्त नहीं उनकी कामना और प्राप्त वस्तुमें जो अनुराग इन कामरागों विना बलवंतोंका बल और भूत प्राणिनमें धर्मसे अविरुद्ध कामहौं ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

दोहा—राजसतामससात्त्विकौ, जेहैंसगरे भाइ ॥
एसबमोमेंवसतहैं, मोहिंनैनसोंचाइ ॥ १२ ॥

जो शमादिक सात्त्विक भाव और द्वेषादिक राजस और जो मोहादिक तामसभाव हैं वे मेरेसे हीहैं ऐसे उनको जानो तौभी मैं उनमें नहीं याने उनके स्वाधीन नहीं हों वे मेरेमें हैं याने मेरे स्वाधीन हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

दोहा—तीनोंगुणकेभावजे, जिनमोह्योसंसार ॥
मोकोकोईनहिंलखत, इनतेपैलीपार ॥ १३ ॥

इन तीनों गुणमय भावोंकरके मोहित यह सर्व जगत् इनसे परे अविनाशी मेरेको नहीं जानता है ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥ १४ ॥

दोहा—मेरीमायागुणमयी, दुस्तरतरीनजाइ ॥
आवैजोकोउमोशरणि, सोज्युतरैसुखपाइ ॥ १४ ॥

जिसवास्ते कि, यह गुणमयी दैवी याने मेरे संबंधिनी मेरी माया दुरत्यय है इसीसे जो मेरे शरण होते हैं वे इस मायाको तरते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

दोहा—पापीमूरखजेजगत, तेनहिंपावतमोहिं ॥
ज्ञानजुमायाकरिहत्यों, असुरगुणनिमेंमोहिं ॥ १५ ॥

माया करके हरागया है ज्ञान जिनका ऐसे मनुष्य वे असुरपनेको प्राप्तहुए निंदित कर्म करनेवाले नरनमें अधम मूर्ख मेरेको नहीं भजतेहैं १५॥

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं च स च मे प्रियः १७

दोहा-पुण्यवंतजेचारिविधि, मोहिंभजतचितदैन ॥
ज्ञानीरोगीकामयुत, जिज्ञासीसुनबैन ॥ १६ ॥
ज्ञानीजोभगताइकरै, सोसबतेअधिकाय ॥
ज्ञानीकोवल्लभहुहौं, ज्ञानीमोहिंसुहाय ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! एकप्रकारके जो संसारसे दुःखी दूसरे जाननेकी इच्छा करनेवाले तीसरे धनादिक चाहने वाले चौथे ज्ञानी यानि स्वरूप ज्ञाता ऐसे चार प्रकारके सुकृति जन मेरेको भजते हैं. हे भरतर्षभ ! तिनमें ज्ञानी नित्य योगयुक्त मेरी मुख्यभक्तिवाला श्रेष्ठ है कारण कि, ज्ञानीका मैं अत्यंत प्रिय हौं और सो मेरे अतिशय प्रिय है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् १८॥

दोहा--मेरेमनमेंसबबडे, ज्ञानीमोकोजानि ॥
उत्तमगतिपाईजुतिन, फलनलेतनाहिंमानि ॥ १८ ॥

वे सर्वही उदार हैं तौभी ज्ञानी मेरेको पुत्रवत् प्रिय है ऐसा मेरा अभिप्राय है कारण कि, वह मेरेहीमें चित्तको युक्त कियेभये सर्वोत्तम भांति मेरेही को ध्यावता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

दोहा-बहुजन्मनिमोकोलहै, ज्ञानवंतरेमित्त ॥
वासुदेवसबमैंलखै, सोदुर्लभहैनित्त ॥ १९ ॥

अनेक जन्मोंके अंतमें सर्वजगत् वासुदेवरूप है ऐसें ज्ञानवान् होताहै याने वासुदेवात्मक जानिके ईर्षादि रहित होताहै तब मेरेकों भजताहै सो महात्मा अतिदुर्लभ है याने कोव्यवधिनमें कोई एक होता है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

दोहा-ज्ञाननहींतिनकेहिये, सेवतऔरेदेव ॥
अपनेकामस्वभावसों, बँध्योजुताहीभेव ॥ २० ॥

दूसरे सर्वतोआपकी राजस तामस प्रकृतिकेरके राजस तामस कर्मोमें लगेभये उनउन कामनाओं केरके नष्टज्ञानभयेहुये उन उन पुत्रादिनिमित्त नियमोंको धारणकेरके अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान् ॥
अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान् देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

दोहा-श्रद्धायुतजेपूजहीं, जोदेवनिचितचाइ ॥
ताकोतेहीमांझहौं, श्रद्धादेहुबटाइ ॥ २१ ॥
सोवाहीश्रद्धासहित, पूजतवाहीदेव ॥
देतजुहौंहीकामना, वहजानतनहिंभेव ॥ २२ ॥

दोहा—फलथोरोपावतजुवे, विनाज्ञानवेमूढ ॥
देवभक्तिदेवनिलहै, मेरेमोमेंगूढ ॥ २३ ॥

"तदेवाग्निस्तत्सूर्यस्तदुचंद्रमाः" इत्यादि श्रुतिनके अर्थको खुलासा करनेवाली जो "यस्यादित्यः शरीरं" इत्यादि श्रुतिनके अर्थ रूप इन श्लोकोंकरके अन्य देवतोंको भी भगवान् आपही के शरीरभूत दिखाते हैं. जैसे कि, जो जो भक्त जिस जिस इंद्रादिरूप मेरे शरीरको श्रद्धाकरके अर्चनेको चाहताँ है उस उस भक्तको मैं वंही अचलश्रद्धा धारणकरता हौं सो भक्त उसी श्रद्धाकरके युक्त उसी इंद्रादिरूप मेरी मूर्त्तिको आराधन करता है. और उसीसे मेरेही करके नियमित कियेभये हित कामना ओंको प्राप्त होता है; परंतु उन अल्पबुद्धिनके वह फल नाशवान् होता है, जैसे कि, इंद्रादिदेवपूजनवाले देवोंको प्राप्तहोते हैं मेरे भक्त निश्चय मेरेको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ॥
परंभावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

दोहा—जाकेथोरीबुद्धिहै, जानतप्रकटनमोहि ॥
अविनाशिउत्तमजुहौं, सबतेन्यारोजोहि ॥ २४ ॥

मेरे अविनाशी सर्वोत्तम परस्वरूपको न जाननेवाले मूर्खलोग जो मैं सर्वके हृदयमें मूर्त्तिमान् प्राप्त तिस मेरेको अव्यक्त याने अमूर्त्ति मानते हैं. तात्पर्य इसीसे अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

दोहा—ढप्योजुमायायोगहो, काहूकोनप्रकास ॥
मूरखमोहितज्ञानहो, अजरअमरसुखवास ॥ २५ ॥

यहां न जाननेका कारण कि, योगमायाकरके आच्छादित मैं सर्वको

दीखता नहीं हौं इसीसे यह मूर्खजन अजन्मा अविनाशी मेरेको नहीं जानता है ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

दोहा-जेबीतेजानततिन्हैं, वर्तमानहूंमित्त ॥
होनहारसबकोलखौं, मोहिंलखैनहिंचित्त ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! मैं जो प्रथम भये उनको और हैं तिनको और होयंगे उन सर्वभूत प्राणिमात्रोंको जानता हौं, परंतु मेरेको कोई भी नहीं जानता है॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

दोहा-संगदोषअज्ञानते, सबैंमोहते होत ॥
मानिलेतहैंआपुको, हमहैंसुखनिउदोत ॥ २७ ॥

हे भारत ! हे परंतप ! इच्छा और द्वेषकरके उत्पन्नभये सुख दुःख लाभ अलाभादि द्वंद्वरूप मोहकरके सर्वभूतप्राणी संसारमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

दोहा-पुण्यकरैंजेजगतमें, दूरिकियेनिजपाप ॥
तेईछुटतजुमोहते, मोकोपावतआप ॥ २८ ॥

और जिन पुण्यकर्मवाले मनुष्योंका पाप नाशको प्राप्त भया है वे द्वंद्व मोहसे छुटेभये दृढव्रती मेरेको भजते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये ॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् २९

दोहा–जरामरणकीहानिको, जेकोउकरतउपाय ॥
जानततेअध्यातमहि, ब्रह्मकर्मकेभाय ॥ २९ ॥

जो मेरे आश्रित होके जरामरण छूटनेके वास्ते यत्नकरते हैं वे उसे ब्रह्मको और सर्व अध्यात्मको सर्व कर्मको जानते हैं इन ब्रह्मशब्दादिकोंका खुलासा आठवें अध्यायमें होगा ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥
प्रयाणकालेपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा–अधिदैवतअधिभूतसों, मोकोजानतनित्त ॥
मरणसमयभूलतनहीं, योगीमेरोचित्त ॥ ३० ॥

जो मेरेको अधिभूत और अधिदैवसहित और अधियज्ञसहित जानते हैं वे मनुष्य ही मेरेमें नित्य चित्त लगायेभये मरणकालमें भी मेरेको जानते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यां सप्तमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

दोहा–अध्यातमकोब्रह्मको, कर्मकहाजगदीश ॥
अधिदैवतअधिभूतको, जानतविश्वेवीश ॥ १ ॥

जो सातवें अध्यायमें कहाथा कि, जो जरामरणसे मुक्त होनेके

वास्ते मेरा आसरा करके यत्न करते हैं वे उस ब्रह्मके तथा सर्व अध्यात्मको और सर्व कर्मको जानते हैं इत्यादि सुनिके अर्जुन कृष्णसे पूँछते हैं कि, हे पुरुषोत्तम ! जो आपने कहा वह ब्रह्म कौन है, अध्यात्म कौन है, कर्म क्या है और अधिभूत कौन कहाता है और अधिदैव कौन कहाता है ? ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

दोहा—अधियज्ञहिकासोंकहत, यादेहीमेंकौन ॥
कैसेतुमकोजानई, प्राणकरतजबगौन ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! इस देहमें अधियज्ञ कैसे भया और कौन है और इस लोकमें मरणकालमें जिसने मन जीता है उस करके कैसे जाननेमें आते हो ? ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

दोहा—अक्षरसोंब्रह्महिकहत, अध्यातमजसुभाय ॥
जोउपजावतजगतको, सोईकर्मस्वभाय ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वचन सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि पर है प्रकृति जिससे याने प्रकृतिमुक्त जो अक्षर याने मुक्त जीव सो ब्रह्म है स्वभाव अध्यात्म कहाता है जो सर्व भूत प्राणिनकी उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग याने सृष्टि सो कर्म संज्ञिक है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

दोहा—देहजुहैअधिभूतयह, अधिदैवतहैजीव ॥
सबदेहिनिकीदेहसे, हौंअधियज्ञसुपीव ॥ ४ ॥

जो क्षरभावे याने नाशवान् देहादिक सो अधिभूत है और पुरुष जो सूर्य-मंडलवर्त्ती मेराही एकरूप सो अधिदैवत है. हे देहधारिनमें श्रेष्ठ अर्जुन ! इस देहमें अधियज्ञ मैं हौं याने जीवका पूज्य मैं हौं ॥ ४ ॥

अंतकालेच मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

दोहा—अंतसमयदेहहितजत, मोसुमिरतजोकोय ॥
सोतबहींमोकोमिले, तहाँनसंशयहोय ॥ ५ ॥

जो पुरुष अंतसमयमें मेरेहीको सुमिरतासुमिरता देहको त्यागिके इसलोकसे जाताहै सो मेरी समताको प्राप्तहोताहै इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥
तंतमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

दोहा—प्राणीजबदेहहितजै, सुमिरैकोईकाज ॥
यामेंसंशयनाहिने, पावैसोईसाज ॥ ६ ॥

जो मेरा सदा और अंतकालहूमें स्मरण करतेकरते शरीर त्यागै सो तो मेरेहीको पावै. अथवा जो जो भाव याने वस्तु अथवा कोई प्राणीको सुमिरतासुमिरता सदा उसीमें लय लीन भयाहुआ अंतमें देहको त्यागताहै, सो हे कुंतीपुत्र ! उसी उसीको प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

दोहा—मेरसुमिरननिजुकरि; शुद्धकरैकिनमित्त ॥
अर्पैमोमेंबुद्धिमन, होंआऊंतवाचित्त ॥ ७ ॥

तिससे सर्व कालमें मेरेको सुमिरो और युद्ध करो; ऐसे मेरेमें मन बुद्धिको लगायेभये मेरेहीको पावोगे, इसमें संदेह नहीं ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नाऽन्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

दोहा-योगऔरअभ्यासमें, जाकेथिरचितहोय ॥
मोंचिताराखैसदा, पुरुषहिंपावैसोय ॥ ८ ॥

हे पृथापुत्र ! सदा अभ्यासयोगयुक्त आत्मस्वरूपविना दूसरेमें नहीं जानेवाला ऐसे चित्तकरके मेरा चिंतवन करताकरता देदीप्यमान अतिउत्तम ऐसा जो परमपुरुष मैं उसे मेरेको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमसः पर
स्तात् ॥ प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो
योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ९ ॥ १० ॥

दोहा-सबकर्त्तासूक्षमअणुअति, कविसुपुरातनमानि ॥
रविसमानसबतेपरे, सुमिरनताकोजानि ॥ ९ ॥
मरणसमैमनुथिरकरै, भक्तियोगबलपाय ॥
भ्रुकुटीमधिप्राणहिधरै, परमपुरुषमेंजाय ॥ १० ॥

जोकोई भक्तिकरके युक्त पुरुष मरणसमयमें अचल मनकरके और योगबलकरके भौंहोंके मध्यमें निश्चल अच्छीतरहसे प्राणोंको प्रवेशकरके अर्थात् कुंभककरके जो सर्वज्ञ, पुरातन, सर्वका शिक्षक, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, सर्वको पालनेवाला, नहीं चिंतवनमें आताहै रूपजिसका, सूर्यसरीखाहै प्रकाशमान् जोपुरुष और प्रकृतिसे पर उसको सुमिरताहै सो उस परं देदीप्यमान पुरुषको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः ॥
यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये

दोहा–अक्षरजाकोकहतहों, वीतरागजइँजात ॥
ब्रह्मचर्यकोजेकरें, तापदकीयहबात ॥ ११ ॥

वेदके जाननेवाले जिसको अक्षर कहते हैं, वीतराग ईश्वरप्राप्तिका यत्न करनेवाले जिसको प्राप्तहोते हैं, जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यको आचरतेहैं, उसै पदको तुम्हारेसे संक्षेपकरके कहोंगा ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

दोहा–सर्वद्वारको वशकरै, मनरोकैहियमाहिं ॥
प्राणहिराखैशीशमहि, रहैधारणागाहि ॥ १२ ॥
प्रणवअक्षरकोजपकरै, सुमिरैमोकोनित्त ॥
इहिविधिजोदेहहितजै, लहैपरमगतिमित्त ॥ १३ ॥

जो योगी देहको त्यागतात्यागता सर्व इंद्रियोंको संयममें करके और हृदयमें मनको रोकके आपके प्राणोंको मस्तकमें चढायके योगधारणामें स्थिर भयाहुआ 'ॐ' इस एकअक्षर ब्रह्मकों उच्चारणै करताकरता मेरेको सुमिरतां सुमिरता देहत्यागिके जातांहै सो अतिउत्तम गतिको प्राप्तहोतांहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

दोहा–थिरचितह्वैमोकोजपैं, सदानिरंतरहोय ॥
तायोगीकोसुलभहों, औरलहैनहिंकोय ॥ १४ ॥

हे पृथापुत्र! जो अनन्यचित्त मेरेको नित्य निरंतर सुमिरताहै उसै नित्य मेरे संयोग चाहनेवाले योगिको मैं सुलभहौं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

दोहा—महापुरुषसिद्धहिलहैं, मोमेंहोतजुलीन ॥
दुखकोघरजोजनमहैं, तामेंहोतुनदीन ॥ १५ ॥

यहांसे अध्यायसमाप्तिपर्यंत ज्ञानी जो कैवल्यार्थी उसकी मुक्ति और ऐश्वर्य चाहनेवालेकी पुनरावृत्ति कहते हैं सो ऐसे कि, जो मेरी उपासनारूप परम सिद्धिको प्राप्तभयेहैं वे महात्माजन मेरेको प्राप्त होके फिर दुःखका घर नाशवान् जन्मको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

दोहा—ब्रह्मलोकलौंलोकजे, तिनकेफिरतजुलोय ॥
अर्जुनमोकोपाइके, जन्मलहतनहिंकोय ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यंत सर्वलोक, पुनरावर्त्ती है और हे कुंतीपुत्र ! मेरेको प्राप्तहोके फिर जन्म नहीं होता है ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

दोहा—सहसयुगनिकेअंतलौं, ब्रह्माकोदिनजानि ॥
रात्रीइतनीहोतहै, ज्ञानीकहैबखानि ॥ १७ ॥

ब्रह्मलोकपर्यंत पुनरावृत्ति देखनेको ब्रह्माके दिनरात्रिका प्रमाण दिखाते भये उसको जाननेवालोंकी श्रेष्ठता कहतेहैं-जो ब्रह्माका हजारचतुर्युगीपर्यंत दिन और हजार चतुर्युगीपर्यंत रात्रिको जानते हैं वे मनुष्य दिनरातिके जाननेवालेहैं, याने दीर्घदर्शी हैं ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञिके ॥ १८ ॥

दोहा-ब्रह्माकेदिनहोतही, प्रगटतुहैसंसार ॥
निशिकेआयेजातहै, मायामेंतावार ॥ १८ ॥

दीर्घदर्शित्व दिखाते हैं सो ऐसे कि, ब्रह्माके दिनके आगममें ब्रह्माके शरीरसे सर्व जीवोंके शरीर होते हैं रात्रिके आगममें उसी ब्रह्माके शरीरमें लीन होते हैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ॥
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवंत्यहरागमे ॥ १९ ॥

दोहा-बारबारउपजतसबै, जीवनसतरेमित्त ॥
ब्रह्माकेदिनरैनिमें, वहीजातहैनित्त ॥ १९ ॥

हे पृथापुत्र ! सोई यह भूतप्राणीसमूह कर्मपरवश भया हुआ सदाहैहै के रात्रिके आगममें लीन होता है, दिनके आगममें उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तोत्सनातनः ॥
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्स्वपि न नश्यति ॥२०॥

दोहा-ब्रह्मजुमायातेपरे, इंद्रिनिगह्योनजाय ॥
सबजीवनकोनशतही, सोकबहूँननशाय ॥ २० ॥

उस ब्रह्माके जडप्रकृतिशरीरसे श्रेष्ठ और जो अव्यक्त सनातन भाव है याने शुद्धचेतन है सो सर्व आकाशादि और शरीर नष्ट होनेसेभी नहीं नष्ट होता है ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥
यं प्राप्य न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

दोहा-सोईअक्षरपरमगति, ताहिनदेखैकोय ॥
फिरेनताकोपाइके, परमधाममेंजोइ ॥ २१ ॥

वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा है 'कूटस्थोऽक्षरउच्यते' उसको परम-गति कहते हैं जिसशुद्धरूपको प्राप्तहोके नहीं जन्मते हैं वह मेरी सर्वोत्तम

धाम है; याने जैसे प्रकृतिमें मेरा शरीर है और जीवभी मेरा शरीर है परंतु जैसे सर्वघर किसी पुरुषकाहै उसमें निजमंदिर श्रेष्ठहोता है तैसे जीवप्रकृतिमें और मैं जीवमें रहता हौं इससे वह मेरा मुख्यशरीर है. यह कैवल्यमुक्ति-कही, अब ऐश्वर्यप्राप्ति कहते हैं ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यांतस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

दोहा--भक्तिकरैतेपाइये, परमपुरुषसोंजानि ॥
जामेंसगरेजीवहैं, जगविस्तारोआनि ॥ २२ ॥

हे पृथापुत्र ! ये सर्व भूतप्राणी जिसके अंतस्थ हैं और यह सर्व जगत् जिसकरके विस्तारितहैं सो पर पुरुष याने परमात्मा अनन्यभक्ति करके प्राप्त होने योग्य है ॥ २२ ॥

यत्र कालेत्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

दोहा--फिरिआवतजाकालमें, नहिंआवतजाकाल ॥
अर्जुनतोसोंकहतहौं, सुनियहसीखविशाल ॥ २३ ॥

हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जिस कालमें देहत्यागिके गयेभये योगी अनावृत्ति-को और आवृत्तिको जाते हैं उस कालको मैं कहता हौं ॥ २३ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

दोहा--अग्निज्योतिदिनशुक्लपट, उतरायणकेमास ॥
जातज्ञज्ञानीयासमें, लहतब्रह्ममेंवास ॥ २४ ॥

जिसकालमें अग्नि प्रकाशक है तथा दिन शुक्लपक्ष है ऐसे छःमहीने उत्त-रायण उसमें गये भये ब्रह्मज्ञानीजन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

दोहा--धूमनिशादक्षिणदिशा, कृष्णपक्षजोहोय ॥
शशिमंडलयोगीलहै, फिरिआवतहैसोय ॥ २५ ॥

जिसकालमें धूम राति तथा कृष्णपक्ष छःमहीने दक्षिणायन इसमें गया-भया योगी चांद्रमस ज्योतिको याने स्वर्गपायके यज्ञादि फलभोगिके" फिर यहाँ जन्मलेता है ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६ ॥

दोहा--शुक्लकृष्णएगतिकही, तेसंसारहिहोति ॥
फिरिआवतहैएकगति, एकलहतहैज्योति ॥ २६ ॥

ये शुक्लकृष्ण मार्ग जगत्के सनातन नियमित हैं एककरके मुक्तिको जाताहै दूसरेकरके फिर जन्मती है ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

दोहा--जो जानै दोऊ गतिन, योगीमोहनहोय ॥
योगीकैअर्जुनतुहूँ, सबकालनिकोजोय ॥ २७ ॥

हे पृथापुत्र ! इने मार्गोंको जानताभया कोईभी योगी नहीं मोहताहै. हे अर्जुन ! तिससे सर्व कालमें योगयुक्त हो" ॥ २७ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-वेदयज्ञतपदानको, फलजुकह्योहैमित्त ॥
योगीताफलकोलहै, सबदिनरहैनचित्त ॥ ❀
सहफलकोहैसारफल, जोगैहरिसोंयोग ॥
भक्तिकरैमोकोमिलै, फलत्यागैकरिभोग ॥ २८ ॥
हरिवल्लभभाषाकियो, गीताको अभिराम ॥
तामेंसंपूरणभयो, वसु अध्याय ललाम ॥ ❀

मनुष्य इसको जानिके फिरजो पुण्यफल वेदाध्ययनमें, यज्ञमें तपमें और दानमें कहा है उसे सबको अतिक्रमण करता है याने उससे भी अधिक फल पाता है, फिर योगीहोके सर्वोत्तम आदिस्थानको पाताहै, याने मुक्त होताहै ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यामष्टमोऽध्यायप्रवाहः ॥ ८ ॥

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसंहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

दोहा--अर्जुनतोसोंकहतहौं, एकगुप्तकीबात ॥
समझैंज्ञानविज्ञानको, लहैमुक्तिसोतात ॥ १ ॥

सप्तम और अष्टमअध्यायोंमें आपकी स्वरूपप्राप्ति भक्तिही से अब नवममें आपकासर्वोत्तमप्रभाव और भक्तिका भी प्रभाव कहते हैं सो ऐसे कि, हे अर्जुन ! यह अतिगुप्तकरनेयोग्य विज्ञानसहित ज्ञानको असूया जो पराये गुणमें दोष लगाना उसकरके रहित जो तुम तिनसे कहूंगा जिसको जानिके संसारदुःखसे छूटोगे ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्त्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

कल्याणका साधन करताहै उससे परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

दोहा--जेशास्त्रविधिछोड़िकै, करतक्रियावशकाम ॥
सिद्धिलहैनहिंपरमगति, नहिंसुखमौं विसराम ॥ २३ ॥

जो शास्त्रविधिको त्यागिके स्वईच्छाप्रमाण चलताहै सो न सिद्धिको पावताहै न सुखको न मोक्षको पावताहै ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–तातेंकाजअकाजमें, तोकोंवेदप्रमान ॥
कर्मनिकरितूजानिकै, तिनकोविधिसुविधान ॥ १ ॥
वेदकरतुजुपरोक्षकै, मोकोंदेतजनाय ॥
मेरेईकर्मनिकरै, मेरीआज्ञापाय ॥ २ ॥ २४ ॥

इससे तुमको कार्याकार्यव्यवस्थामें शास्त्रप्रमाण जानिके इस लोकमें शास्त्रविधानोक्त कर्म करनेको योग्यहो ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां षोडशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

दोहा—श्रद्धायुतजापहिकरत, तजिवेदनकीनीति ॥
सतरजतमसोथितिकहा, कहियेतिनकीरीति ॥ १ ॥

सोलहवें अध्यायमें ईश्वरतत्वका ज्ञान और ईश्वर प्राप्तिका उपाय इनके कारण मूल वेदही हैं ऐसे कहा और अंतमें कहा कि, शास्त्रविधिहीन कर्म-करनेवालेको सुखादिक नहीं सो सुनिके अर्जुन बोले कि, हे कृष्ण ! जो शास्त्रविधिको त्यागिके श्रद्धाकरके युक्त यजन करतेहैं उनकी क्या निष्ठाहै सत्वगुणहै किंवा रजोगुण तमोगुणहैं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवंति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥
सात्विकी राजसी चैवं तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

दोहा—श्रद्धानरकीतीनिविधि, होतजुसहजस्वभाव ॥
सात्त्विकराजसतामसी, सुनियेतिनकेदाव ॥ २ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि, सात्विकी और राजसी और तामसी ऐसें तीनप्रकारकी निश्चय श्रद्धा होतीहै सो देहधारिनकी स्वभावहीसे होती हैं उसको सुनो ॥ २ ॥

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवंति भारत ॥
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

दोहा—परंपराहीजनमके, श्रद्धाहोतसमान ॥
श्रद्धामययहपुरुषहै, श्रद्धाताहिप्रधान ॥ ३ ॥

हे भारत ! सबकी श्रद्धा अंतःकरणके अनुरूप होती हैं यह पुरुष श्रद्धामयहै जो जिसश्रद्धावाला होताहै सो वहीहोताहै जैसे सात्विकी श्रद्धावाला सात्विक इत्यादि ॥ ३ ॥

यजंते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

दोहा-देवनिसेवैसात्त्विकी, राजसराक्षसयक्ष ॥
भूतप्रेतगणतेयजै, नरजुतामसीपक्ष ॥ ४ ॥

सात्विक पुरुष देवतानको पूजते हैं राजसी यक्षराक्षसोंको और और तामसी जन प्रेत भूतगणोंको पूजतेहैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
कर्शयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मां चैवांतः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

दोहा--घोरतपस्याजेकरैं, जेनवेदमतिहोहिं ॥
भरैंदंभअहँकारसों, कामरागबलगोहिं ॥ ५ ॥
पंचभूतजेदेहमें, तिनकोवेदुखदेत ॥
हियमेंमोंहूकोहनत, तेहैंअसुरअचेत ॥ ६ ॥

दंभ और अहंकारसंयुक्त कामना और विषयानुराग इनहीकी सेनायुक्त जे मनुष्य वे अशास्त्रविहित याने जो शास्त्रप्रसिद्ध नहीं ऐसे घोर तपको तपते हैं वे अज्ञानी जन शरीरमें रहेभये भूतसमूहको और अंदर शरीरमें स्थित मेरेको भी दुःख देते हैं उनको आसुरनिश्चय याने असुरपनेमें निश्चय जिनका ऐसे उनको जानो ॥ ५ ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

दोहा-तीनिभाँतिआहारयह, सबकोरोचनहोय ॥
यज्ञदानतपभेदजे, मोपैसुनियेसोय ॥ ७ ॥

आहार भी सर्वका तीनप्रकारका प्रिय होता है और यज्ञ तथा तप दान येभी तीनि प्रकारके हैं तिनका भेद यह सुनो ॥ ७ ॥

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः

दोहा-सुंदरथिरअतिचीकनो, सात्विकप्रिय आहार ॥
आयुसत्त्वआरोग्यबल, प्रीतिबढावनहार ॥ ८ ॥

जो आहार आयुष्य होशियारी बल आरोग्य सुख और प्रीतिके बढाने-वाले होय मधुरादिरसयुक्त स्निग्ध स्थिर याने बहुतकाल रहनेवाले हृदयका वर्द्धक ऐसे आहार सात्विक जनोंको प्रियहोते हैं ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

दोहा-दाहकरूखोउष्णकटु, तीच्छनखाटोखार ॥
शोकरोगदुखदेतहैं, राजसयेआहार ॥ ९ ॥

अतिकटु जैसे बहुत मिर्चवाला पदार्थ अतिखट्टा अतिलोनवाला वडावगैरे अति गरमागरम अतितीक्ष्ण राईवगैरे मिश्रित अति रूखे और दाहकारक राजसिनके प्रिय आहार दुःख शोक और रोगोंके देनेवा-लेहोते हैं ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ॥
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

दोहा-जाहिधरैपहिरकुगयो, बासोउठोबुसाय ॥
जूठोऔरपवित्रनहिं, भोजनतामसखाय ॥ १० ॥

जिस भात वगैरेको एकपहर बिता होय वह ठंढा पदार्थ रसविहीन दुर्गंधवाला और बासी और उच्छिष्टभी ऐसा अपवित्र भोजन तामसिनको प्रियहोताहै ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥ ११ ॥

दोहा—विधिविधानसोंकीजिये, छाँड़िफलनकीआस ॥
समाधानधरिहीयमें, सात्त्विकयज्ञविलास ॥ ११ ॥

यज्ञकरनाही योग्य है ऐसे मनको समाधानकरके फल इच्छारहित मनुष्योंने विधिपूर्वक जो यज्ञ कियाहोय सो यज्ञसात्त्विक है ॥ ११ ॥

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ॥
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

दोहा—करिकैफलकीकामना, औरदंभकोभाय ॥
ऐसेजोयज्ञहिंकराहिं, सोहैराजसदाय ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जो फलकी इच्छाकरके और दंभके वास्ते भी यज्ञकरे उस यज्ञको राजस जानो ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

दोहा—विनुअन्नहिविनुदक्षिणा, विनामंत्रविधिहीन ॥
विनश्रद्धायज्ञहिंकरैं, सोहैतामसलीन ॥ १३ ॥

जो यज्ञ विधिहीन उचित अन्नहीन मंत्रहीन दक्षिणारहित और श्रद्धारहित यज्ञ तामस कहा है ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

दोहा—ज्ञानीद्विजगुरुदेवको, पूजैशुचिमृदुहोय ॥
ब्रह्मचर्यहिंसातजै, तपशारीरकसोय ॥ १४ ॥

देव ब्राह्मण गुरु और विद्वानोंका पूजन शुचिता सरलता ब्रह्मचर्य और परपीडावर्जन यह शरीरसंबंधी तप कहा है ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

दोहा-भयनकरैजेप्रियवचन, हितकारीसतभाय ॥
करैवेदअभ्यासपुनि, वाचिकतपयादाय ॥ १५ ॥

जो वचनें उद्वेगकारक न होयें औरें सत्यप्रिय हित होयें औरें वेदपाठ मंत्रजपादिकोंका अभ्यासँ यहै वाणीमयें तपँ कहीं है ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

दोहा-मनप्रसादजुमृषादिमृदु, इंद्रियनिग्रहमौन ॥
भावशुद्धवहकरतहै, मानसतपसीतौन ॥ १६ ॥

मनकी प्रसन्नता सदयपना याने क्रूर न होना मितभाषण मनको वश करैना और अंतःकरणकी शुद्धता यह इतनाँ तप मानस कहाता है॥ १६॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

दोहा-श्रद्धासोंनरतपकरत, सोहैतीनोंभाँति ॥
फलइच्छाछाँडैकरै, सोईसात्त्विककाँति ॥ १७ ॥

फलकी इच्छा न करनेवाले योग्य पुरुष तिनकरके परम श्रद्धाकरके तपाभया सो तीनों प्रकारका याने मानस, कायिक, वाचिक तप सात्त्विक कहा है ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ॥
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

दोहा-पूजाआदरमानको, औरदंभकेकाज ॥
सोतपराजसकहतहैं, चंचलछनकसमाज ॥ १८ ॥

जो तप सत्कार मान और पूजाके वास्ते और दंभकरकेभी किया जाता है सो यहां शास्त्रमें राजस चल और नाशमान कहा है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

दोहा–देहहिदुखदेमूढ़ह्वै, हठसोंजोतपहोय ॥
परकोकष्टदिखावहीं, तामसतपहैसोय ॥ १९ ॥

जो तप दुराग्रह करके आपकी पीड़ाका निमित्त अथवा दूसरेके बिगारके वास्ते कियाहोय सो तामस कहाहै ॥ १९ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥

दोहा–दानदेइउपकारविनु, पात्रविप्रकोदेखि ॥
देशकालकोजानिके सात्त्विकदानविशेखि ॥ २० ॥

जो दान देनाही चाहिये ऐसी बुद्धिकरके कुरुक्षेत्रादि देशमें और ग्रहणादिककालमें जिससे फिर कुछ अपना उपकार नहोय ऐसेको तथा वह पात्र याने तपस्वाध्यायकरके रक्षक होय उसको दियाजाय सो दान सात्विक कहाहै ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

दोहा–कीजैजोउपकारको, फलकीआशामानि ॥
कीजैजोअतिकष्टसों, ताकोराजसजानि ॥ २१ ॥

जो प्रत्युपकारके वास्ते अथवा फलके निमित्तकरके फिर भी राहुवगैरे ग्रहनिमित्त उग्रदान दियाजाय सो राजस कहा है ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

दोहा–विनादेशअरुकालविनु, दीजैनीचहिदान ॥
विनआदरअधिकारकरि, तामसताहिबखान ॥ २२ ॥

जो दान तिरस्कार आवज्ञापूर्वक देशकालविना और कुपात्रोंको दियाजाताहै सो दान तामस कहा है ॥ २२ ॥

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

दोहा--ॐ तत्सत्एब्रह्मके, नाम जु तीनप्रकार ॥
विप्रवेदअरुयज्ञपुनि, कीन्हेंपहिलीबार ॥ २३ ॥

ओं तत् सत् ऐसें तीन प्रकारका वेदका निश्चय जाना गया है "याने ओंशब्दसे कर्मका स्वीकारकरना उचितहै तत् शब्दसे तदर्थ याने परमेश्वरार्थ करना उचितहै सत्से श्रेष्ठकर्म साधुवृत्तिसे करना ऐसा वेदका निश्चय" उसी निश्चयकरके युक्त ब्राह्मण याने वेदकर्म करनेवाले तीनों वर्णकर्मस्वीकारार्थ "और वेद जो ईश्वरार्थकर्मको प्रतिपादन करतेहैं "और यज्ञ दान जो सत्कर्म ये मैंने पूर्वकालमें स्थापितकिये हैं ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्त्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

दोहा-क्रियायज्ञअरुदानतप, कहिपहिलेओंकार ॥
वेदवंतयोंकहतहैं, विधिविधानविस्तार ॥ २४ ॥

जिससे कि वेदवादी तीनोंवर्णकर्म स्वीकारार्थ हैं तिससे ओं ऐसे कहिके याने कर्म स्वीकार करके वेदवादी तीनोंवर्णोंकी विधिसे कही गई यज्ञ दान तपकी क्रियाएँ निरंतर प्रवर्त होती हैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियंते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

दोहा-तत्त्वयहैकहियेकरत, क्रियायज्ञतपदान ॥
फलअभिलाषाछाँडिजे, चाहतमुक्तिनिदान ॥ २५ ॥

तत् याने कर्म तदर्थ है याने परमेश्वरार्थ है ऐसी बुद्धिसे फलेकर अनुसंधान नहीं करके यज्ञ, दान, तप, क्रिया और अनेकप्रकारकी दान-क्रिया मोक्षके चाहनेवालों करके कीजांती है ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

दोहा-साधुभावसतभावमें, सतकोकरतउचार ॥
औरभलेपुनि कर्ममें सतकोगावतसार ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! श्रेष्ठपनेमें और साधुभावमें सत् ऐसा यह वाक्य युक्त करते हैं तथा श्रेष्ठ कर्ममेंभी सत्शब्द युक्त करते हैं ॥ २६ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥ २७ ॥

दोहा-यज्ञदानतपकीजुथिति, ताहिकहतसतनाम ॥
ताकेजेजेकर्म हैं, ताकौंसतविश्राम ॥ २७ ॥

जो यज्ञमें, तपमें और दानमें स्थिति है सो सत् ऐसे कहाती है और जो ईश्वरार्थ कर्म हैं सो सत् निश्चय हैं ऐसे कहते हैं इन चारों श्लोकोंमें ॐ तत् सत् इनका खुलासा किया है ॥ २७ ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा—श्रद्धाविनुहोमतजनत, देतसबैसुअकाज ॥
अर्जुनसोयहअसतुहै, दुहूँलोकनहिंसाज ॥ २८ ॥

हे पृथापुत्र ! जो श्रद्धाविना होमभया हवन दिया दान तपाभया तप और कियाभया कर्म है सो असत् ऐसा कहाता है सो न परलोकमें न इस लोकमें सुखदायक है ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां सप्तदशोऽध्यायप्रवाहः ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

दोहा—त्यागसत्त्वजान्योचहत, कहियजुश्रीभगवान ॥
तत्त्वऔरसंन्यासको, न्यारोकरौबखान ॥ १ ॥

अब इस अठारहवें अध्यायमें सर्वगीताका सारांश निरूपण होय, तहां अर्जुन प्रश्न करते हैं कि, हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! संन्यासका और त्यागका तत्त्व न्यारान्यारा जाननेको चाहता हौं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा—कामयुक्तकर्मनितजै, ताहिनामसंन्यास ॥
कर्मफलनिकोत्यागयह, त्यागकहतसुखरास ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोलतेभये कि, कवि जो सारासारविवेकी वे कामनावाले कर्मोंके छोड़नेको संन्यास जानते हैं और

विचक्षण जो तत्वज्ञानी हैं वे सर्वकर्मोंके फलत्यागको त्याग कहते हैं ॥ २॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

दोहा-कर्मछाँडियेदोषको, कोउकहतयारीति ॥
यज्ञदानतपकर्मजिति, भजौकरौयानीति ॥ ३ ॥

कोई एक ज्ञानीपुरुष दोषवाला कर्म त्यागना चाहिये ऐसे कहते हैं और कितनेक और आचार्य यज्ञ, दान, तप, कर्म नहीं त्यागना चाहिये ऐसे कहते हैं ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

दोहा-याठौरहिपारथज्ञतू, मेरोनिश्चयजानि ॥
तीनिभाँतिकोत्यागयह, अर्जुनचितमेंआनि ॥ ४ ॥
यज्ञदानतपकर्मये, कीजेतजियेनाहिं ॥
जातेपंडितजनइन्हें, गिनतपवित्रहिमाहिं ॥ ५ ॥

हे भरतसत्तम ! उस त्यागमें मेरा निश्चय सुनो हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जिससे कि, त्याग तीन प्रकारका कहा है तिसीसे यज्ञ, दान, तपरूप कर्म नहीं त्यागना, करनाही योग्य है यज्ञ, दान और तप ये ज्ञानिनको भी पवित्र करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
...ति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

दोहा-फलछाँडैसंगहितजै, करैकर्मचितचाय ॥
अर्जुनयहमेरोमतहि, निश्चयउत्तमदाय ॥ ६ ॥

हे पार्थ ! ये यज्ञादिकैभी कर्म ममता और फलोंको त्यागिके करने-योग्य हैं ऐसा निश्चय कियाभयाँ मेरा उत्तम मत है ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

दोहा-जोअवश्यकरनोकरम, ताकोछाँडिनदेय ॥
जोछोडैअज्ञानते, सोतामसगतिलेय ॥ ७ ॥

कारण कि, जो नियमित संध्यादि पंचमहायज्ञादिक हैं उन कर्मका त्याग नहीं हो सकता है जो मोहँसे उसका त्याग किया सो तामस कहाता है ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

दोहा-इहैजानिकर्मनितजै, मतदेहीदुखहोइ ॥
यहतोराजसत्यागहै, यामेंफलनाहिंकोइ ॥ ८ ॥

जो कर्म दुःख ऐसे शरीरक्लेशके भयसे ही त्यागै सो राजस त्यागको करके त्यागफलको नहीं पावता है ॥ ८ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ९॥

दोहा-करनोकर्मअवश्ययह, जानिजुकीजैकर्म ॥
संगऔरफलकोतजै, सात्त्विकत्यागसुधर्म ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कर्म करनेयोग्य ऐसी बुद्धिसे ममता और फलको त्यागिके नियमित याने उचित ऐसीही बुद्धिसे करे सो त्याग सात्त्विक कहा है ॥ ९ ॥

... कुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥ ...नते हैं और